बलराज साहनी

वसंत क्या कहेगा ?

(कहानियाँ तथा अन्य ललित निबन्ध)

भारती प्रेस प्रकाशन
इलाहाबाद

अपने अज़ीज़ दोस्त

अमृतलाल नागर

को

एक बात

भूमिका के नाम पर कहने को तो कुछ था ही नहीं लेकिन रस्म-अदायगी के तौर पर कुछ लिखना ही पड़ा। कहानी-संग्रह छपवाने का कभी मैंने विचार ही नहीं किया था हालाँकि कई एक प्रकाशकों ने इसे प्रकाशित करने के लिए कई बार मुझे लिखा। लेकिन इस सम्बन्ध में देवेन्द्र के एक के बाद कई खत आये तो मैं इस उत्साही युवक प्रकाशक का दिल न तोड़ सका और मैंने इस संग्रह को छापने की अनुमति लिख भेजी। इनमें से ज़्यादातर कहानियाँ आज से लगभग बीस बरस पहले की लिखी हुई हैं। तब मैं शान्तिनिकेतन में अध्यापक था। तब गुरुदेव टैगोर जीवित थे। उनके व्यक्तित्व का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इन में से कुछ कहानियां समय समय पर हँस, विशालभारत तथा धर्मयुग में प्रकाशित होती रही हैं। "शाहज़ादों का ड्रिंक" मेरी सब से पहली कहानी है। इच्छा रहते हुए भी इधर मैं लेखन कार्य को ओर अधिक समय नहीं दे पा रहा हूँ और जो कुछ लिखता भी हूँ वह अपनी मातृभाषा पंजाबी ही में। मैं चाहता था कि इस संग्रह में चार-पाँच नई कहानियाँ और जोड़ दी जायँ मगर प्रकाशक के पास इन्तज़ार करने का समय ही नहीं था। अगर प्रस्तुत संग्रह पाठकों को पसन्द आया तो आयंदा भी किसी और रचना के छपने की आशा की जा सकती है।

देवेन्द्र बाहरी ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने में जिस तत्परता और लगन का परिचय दिया है वह निःसन्देह प्रशंसनीय है। समझ नहीं पा रहा है कि उसे क्या धन्यवाद दूँ।

जुहू,
बम्बई

बलराज साहनी

प्रकाशकीय

कुछ प्रतिभाशाली लोग अपने जीवन में एक ही क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और उसी में क्रमशः उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होते हैं। किन्तु कुछ लोग इतने प्रतिभाशाली होते हैं कि अपने जीवन में विभिन्न क्षेत्रों में गति प्राप्त करते हैं तथा हर क्षेत्र में शिखर पर ही दिखायी पड़ते हैं। श्री बलराज साहनी उन्हीं विशेष प्रतिभाशाली लोगों में से हैं।

उन्होंने व्यापार, अध्यापन, पत्रकारिता, साहित्य-सृजन, लोक सेवा, रेडियो, रंगमंच और चलचित्र जगत् में समय समय पर प्रवेश किया और प्रत्येक क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त किया। इधर लोग उन्हें चल-चित्रों के महान् अभिनेता के रूप में ही पहचानने के अभ्यस्त हो गये हैं और उनके जीवन की शेष उपलब्धियों की ओर से बेखबर रहे हैं।

'वसन्त क्या कहेगा' में श्री बलराज साहनी की सशक्त लेखनी से उद्भूत उन कहानियों तथा ललित कृतियों का संकलन प्रस्तुत किया गया है जिन्हें पढ़कर आज से कुछ वर्षों पहले पाठकों तथा आलोचकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी। वैसे नम्रता-प्रदर्शन के लिए लेखक ने अपने एक पत्र में अपनी कहानियों के सम्बन्ध में लिखा है, "....और फिर कौन जाने उस ज़माने की चीज़ इस ज़माने में भी पसन्द की जायगी या नहीं।...." लेकिन मुन्शी प्रेमचन्द के अनुसार "जो साहित्य है वह पुराना नहीं होता और जो पुराना हो चुका है वह साहित्य ही नहीं है।"

पाठक इस संकलन को पढ़कर अनुभव करेंगे कि श्री बलराज साहनी की इन कृतियों में वह ताज़गी, रवानगी और अनूठापन है जो साहित्य की कसौटी है। हम यह संकलन इस विश्वास से प्रस्तुत कर रहे हैं कि अभिनेता बलराज साहनी से कम लोक प्रियता तथा प्रतिष्ठा कथाकार बलराज साहनी को प्राप्त नहीं होगा।

इस संकलन के प्रकाशन को अनुमति देकर श्री बलराज साहनी ने अपनी आत्मीयता और सहृदयता का परिचय देने के साथ-साथ भारती प्रेस प्रकाशन को ऐसो उत्कृष्ट कृति प्रकाशित करने का गौरव प्रदान किया है। हम आशा करते हैं कि शीघ्र हो श्रो साहनी की कोई अन्य कृति भी प्रकाशित करेंगे।

प्रस्तुत संकलन की प्रेसकापी तैयार करने तथा प्रकाशन सम्बन्धी अन्य कार्यों में श्री सुरेन्द्रपाल सिंह, एम. ए. ने जो सहयोग दिया है उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

१०, दरभंगा रोड,
इलाहाबाद—२.

देवेन्द्र बाहरी

१.	वसन्त क्या कहेगा ?	११
२.	ओवर कोट	१८
३.	बापसी व वापसी	२८
४.	शाहज़ादों का ड्रिंक	५२
५.	ज़र्रे	६६
६.	दोपहर का सर्वनाश	८२
७.	तलिस्म	१००
८.	पालिशवाला	११३
९.	रूप का अन्तिम चित्र	१२०
१०.	शैवरले-टैवरले-हैवरले	१३०
११.	बिज़नेसमैन की डायरी	१४२
१२.	दिल मतलब कलेजा	१५५
१३.	एक मधुर याद	१७०
१४.	रमज़ान	१८५
१५.	पूरब के नाई	१९६
१६.	समाधि-लेख	२०३
१७.	संस्मरण	२०४

कहानियाँ

वसन्त क्या कहेगा?

जीवन की कितनी घटनायें ऐसी होती हैं, जिनकी कहानी नहीं बन सकती, लेकिन उनकी याद कुछ ऐसा विलक्षण आनन्द दे जाती है कि व्यक्ति उसे हृदय से लगाये बिना नहीं रह सकता। और इस याद को ताज़ा करने के लिये फ़िज़ूल सी चीज़ें काफ़ी हैं—ग़ुसलखाने में किसी विशेष साबुन की खुशबू, तेज़ हवा में रोशनदान की ठक ठक....

उनके पास तीन ही तो कमरे थे। तिस पर गीली दीवारें और चूहों की पीठ पर टिके हुये फ़र्श। कोई वस्तु ठिकाने न थी। छतों पर जालों की मसहरियाँ लग रही थीं, दीवारों के जोड़ों में छोटे-छोटे कीड़ों के तरतीबवार तम्बू लग रहे थे, जिन्हें मंजु और माधव अपनी आर्थिक समस्याओं पर विचार करते समय असामान्य एकाग्रता से छीलते रहते।

इन तीन अपर्याप्त कमरों के पीछे एक बड़ा भारी बाग़ था। पुराने

ढंग का। उसके अग्रभाग में लकड़ी की ब्राकटों पर लदी हुई अंगूर की बेलों की लम्बी-लम्बी सुरंग सी थी। सुरंग के अन्त में एक विशाल फुलवाड़ी थी, जिसमें डैफ़ोडिल, हालीहाक, लेडी आफ़ दि नाइट आदि विदेशी फूलों की क्यारियाँ थीं। इसके बाईं ओर बीसेक बीघे का नन्दन वन था, जिसमें लीची, आम, लुकाट-नाशपाती आदि के अगणित पेड़ थे। दाहिनी ओर संगमरमर की सिलों से जड़ा हुआ एक तालाब था, जिसमें कमल खिलते थे। तालाब के किनारों पर सेठ साहब ने संगमरमर की कुछ बड़ी-बड़ी नग्न मूर्त्तियाँ बम्बई से मंगवाकर लगवाई थीं। बीच में एक फव्वारा भी था। और आगे चलकर सरू-वृक्षों से अंकित कई लॉन थे, जिनमें सैकड़ों प्रकार के फूल खिला करते थे। (इससे आगे जाना मंजु पसन्द नहीं करती थी, बाग़ तो था।)

माधो इस बाग़ की और साथ वाली कुछ कोठियों की देखभाल करता और क़िरायेदारों से किराया वसूल करता था, जिसके एवज़ में उसे तीस रुपये माहवार मिलते और रहने के लिये कमरे।

सेठ साहब सुबह शाम आकर स्वयं अपने उद्यान की देखभाल कर जाते। थे इतने मोटे कि लॉन के जिस हिस्से पर चहलक़दमी कर जाते, वहाँ घास कई दिन तक सिर न उठा सकती। आस्ट्रेलिया, हालैंड, काश्मीर इत्यादि दूर-दूर के देशों से सेठ जी बीज मंगवाते, और नई क्यारियों पर जी खोलकर काम करते और खर्च भी। जीवन में यही एक उनका मनोरंजन था।

उनके कार्यक्रम में मंजु को बेहद दिलचस्पी थी। ज्यों ही उनकी पीठ मुड़ती, या बेंच पर पड़े-पड़े ऊंघने लगते, मंजु चुहिया की तरह घर से निकल कर बाग़ में जा घुसती और मालियों से धीरे-धीरे बात करती। उनसे सेठ साहब के नवीन आदेशों के बारे में पूछती और राय देती,

नये फूलों के नाम रटती, और जब अवसर मिलता, अपने बालों को सजाने के लिये सेठ साहब की कीमती-से-कीमती क्यारी पर हाथ साफ़ कर देती।

सेठ साहब उसके 'सहयोग' से सख़्त अप्रसन्न थे। कई बार हार्दिक इच्छा हुई कि उसे पकड़कर पीटें, लेकिन तबीयत के सुस्त थे। और फिर उनका अपना कोई बाल-बच्चा भी न था।

यह कहा जा चुका है कि मंजु उद्यान के परले सिरे तक कभी न जाती थी। उससे उसे दिली नफ़रत थी। वहाँ हरियाली तो छू नहीं गई थी, थे केवल बीसियों बेढंगे दिगम्बर नंग-धड़ंग पेड़, जिनपर न पत्ते थे, न फल न फूल। जब से मंजु यहाँ पर रहने लगी थी, तभी से ये वैसे के वैसे खड़े थे।

जब मंजु टयुलिप, हेसिन्थ और गुलाब के गमलों को भिन्न-भिन्न पंक्तियों में सजाकर हार जाती, तो उंगली मुँह में लेकर एकटक उन बेढब दरख़्तों की ओर देखती और उनके अस्तित्व की व्यर्थता पर हैरान हुआ करती। न फूल, न पत्ते, न शक्ल, न सूरत—उद्यान का सबसे रमणीक भाग क्यों उनकी भेंट किया गया था ? क्या कोई विशेष रहस्य था इसमें ? मंजु नित्य सोचती कि आज माधो से पूछेगी; लेकिन नित्य भूल जाती। यह उसकी आदत थी। भाजी में नमक डालना भूल जाती, धोबी के कपड़ों वाली कापी खो डालती, तालियाँ भीतर छोड़कर संदूक बन्द कर देती—जीवन की आवश्यक बातें वह ठीक मौके पर हमेशा भूल जाती। तबीयत ही कुछ ऐसी थी।

इन पेड़ों को देखते ही उसे अस्पताल के सर्जिकल वार्ड में टंगे हुये अस्थिपंजर स्मरण हो आते, और वह सिहर उठती। कई दिन घंटों बैठकर उनकी सूखी टहनियों को पुचकारती रही, दिलासा देती

रही, लेकिन कभी एक कोंपल भी उमड़ने में न आई। अब फ़रवरी का महीना सिर पर था। बुलबुलें आ गयी थीं। नरगिस और स्वीट पी फूट रहे थे, लेकिन ये बेढब पेड़ नियमानुसार अपनी नग्न निर्लजता का प्रदर्शन कर रहे थे।

छिः क्या यह वसन्त का अपमान नहीं है ?....वसन्त क्या कहेगा ? आखिर बेचारी मंजु ने बाल्टियाँ उठाईं और भर-भरकर उनकी जड़ों में पानी उड़ेला और फिर पास बैठकर उनकी सूखी टहनियों को हाथ से सहलाया। किन्तु व्यर्थ—न कहीं पत्ता और न कहीं पत्ते की शक्ल। आखिर सेठ साहब की मूर्खता पर खिन्न होकर मंजु ने फ़ैसला कर लिया कि इस बाग़ का सुधार करना अब उसके बस की बात नहीं। उसने प्रण किया कि जब तक माली उन वृक्षों को काटकर जला न देगा, वह बाग़ में कदम ही नहीं रखेगी।

लेकिन अभी इस प्रण को एक सप्ताह भी न होने पाया कि माधो मंजु को ज़बरदस्ती खींचकर बाग़ में ले गया। उस रात वायु में कठोरता कम थी, और शिशिर का चांद भी मानो कुछ गरमाई पाकर अधिक स्निग्ध और दीप्तिमान हो उठा था घास मखमल की तरह चमक रही थी और बीच-बीच में फूलों की क्यारियां सलमे सितारे की तरह जगमगा रही थीं।

मंजु आँख मूंदकर सिर को ऊपर-नीचे और दायें बायें हिलाती हुई कदम रख रही थी। ऐसा करने से फूल उसे नाचते हुए से मालूम देते थे, और साथ ही ये कम्बख़्त कुरूप नंग धड़ंग वृक्ष भी आँखों से छिप जाते थे।

माधो ने उसके खेल में विघ्न डालना चाहा, पर जब वह न मानी

तब उसे अपनी बग़ल में लेकर बेंच पर बैठ गया। एकाएक उसने वही प्रश्न मंजु से पूछा, जो मंजु स्वयं कई दिनों से उससे पूछने वाली थी।

"मंजु, जानती हो, वे रूखे-सूखे पेड़ कौन से हैं ?"

मंजु का छोटा-सा मुंह एकाएक विस्मय से खुल गया। माधो ने कैसे जान लिया कि वह यही प्रश्न उससे पूछना चाहती थी ? माधो सोचने लगा, मैंने कौन सी ऐसी बात कह दी, जिससे इसे इतना बड़ा मुंह खोलने की आवश्यकता हुई ? किन्तु वह मंजु के स्वभाव का कुछ-कुछ समझने लगा था। एकाएक उसने झुककर मंजु के उठे हुए मुंह पर अपना मुंह रख दिया और फिर मंजु के साथ सटकर बैठता हुआ बोला—"पगली ये वही पेड़ हैं, जिनके झड़ते हुये फूलों के नीचे हमने पहली बार एक दूसरे को चूमा था।"

आश्चर्य से भरकर मंजु केवल इतना ही कह पाई—"अलूचों के ?"

उसके सारे शरीर में सिहरन दौड़ गई, उसका रोम-रोम उसी तरह पुलक उठा, जैसे एकबार पिछले साल इन्हीं दिनों में, जब माधो ने चुपचाप उसका अचेष्ट हाथ अपने हाथों में ले लिया था....और फिर सायंकाल दोनों छिपकर सैर को निकल गये थे....और....चोरों की तरह किसी के बाग़ की दीवार के पीछे नंगी ज़मीन पर बैठ गए थे.... माधो ने क्या कहा था ?....

"मंजु, मैं—मैं नहीं जानता, मुझे क्या हो गया है, किन्तु मुझे रात को नींद नहीं आती। मैं—तुम—तुम्हारे साथ—क्या तुम मेरा भाव समझ गयी हो ?"

मंजु ने सर को आवश्यकता से अधिक हिलाकर कहा था—"नहीं...."

माधो ने और भी पास जाकर क्या कहा था—"हम दोनों एक दूसरे के साथी हैं। मैं तुम्हारी मदद करूँगा। तुम मेरी मदद करना। इसमें कौन-सा अपराध है ?"

मंजु ने पूछा था—"फिर मुझे पढ़ाओगे ?"

और माधो ने उसका हाथ पकड़कर प्रतिज्ञा की थी—"अवश्य" ! और मंजु ने मानो किसी गम्भीर चिन्ता में आँखें बन्द कर ली थीं.... और माधो के ओंठ बढ़ते आ रहे थे, बढ़ते आ रहे थे। उसी क्षण कहीं आहट हुई थी और माधो के ओंठ उसके गाल पर आ लगे थे, और उसने कहा था—"चलो भागें यहाँ से कोई आ रहा है।" लेकिन मंजु न हिली थी। बल्कि अपने दुपट्टे को मुंह पर तानकर वहीं पड़ रही थी। उसी समय तीन-चार मज़दूर वहां से गुज़रे थे और दोनों को देखकर दिल खोलकर हंसे थे। जब वह उठी थी, तो उसका दुपट्टा बर्फ़ जैसे सफ़ेद फूलों से भरा हुआ था....

माधो ने कहा—"हां ये वही अलूचों के पेड़ हैं।"

माधो ने आज तक उसे कुछ भी नहीं पढ़ाया, और यदि सोचा जाय, तो तकलीफ़ें भी हज़ार दिलवाई हैं। किन्तु इन बातों को याद न करके मंजु ने उठकर बारी-बारी से सभी प्रेतकाय वृक्षों को सहलाया, प्रत्येक से कुछ कहती हुई बढ़ती चली। माधो चुपचाप देखता रहा।

× × ×

उसी रात अलूचों की नई कोंपलें फूट पड़ीं। और प्रातःकाल उन पेड़ों के पास खड़े होकर सेठ साहब बड़बड़ा रहे थे—"आज फिर क्यारियों में पैर मार गयी है। लड़की है कि आफ़त। अभी कहीं सामने आ जाय तो—"

मंजु ने दूर से सुन लिया।

ओवर कोट

शाम के छः बजे इकबालनाथ सख़्त चिन्तित था कि कैसे अपने आप को संवार सके। उसने अपने एकमात्र सूट में कई दोष देखे। कोट की बांह पर चूने की तह जमी थी, जिसे बिना ब्रश के परिष्कृत करना असंभव था। वह ब्रश कहां से लाये ? कुछ साहस कर, कुछ संकोच कर, आखिर ऊपरवाली छत के पड़ोसियों से ब्रश तो मांग लाया, किन्तु देखा कि केवल बांह के ब्रश करने से काम न चलेगा। एक स्थान ब्रश कर चुकने पर दूसरे स्थान पर मैल नज़र आने लगती, और वक्त तंग था। पतलून का जेब फिरा हुआ था। बूट तो पालिश करवा लिये थे, किन्तु जुराबों की ऐड़ियां फटी हुई साफ़ नज़र आती थीं। बाहर की जेब के लिए रूमाल भी न था। आखिर किसी तरह, इस विश्वास को अग्रसर करके कि इतने ध्यान से देखता ही कौन है, अपनी अन्धकारमयी संक्षिप्त कोठड़ी को ताला लगाकर गाल्फ़ रोड की ओर धड़कते हुए दिल से रवाना हो गया।

यदि वह इस समय माल रोड पर पदार्पण करता तो उसकी मुरड़-मुरड़ पतलून, अनफब टाई, व उद्धत बालों को देखकर संभव है, कई परिचित भद्र पुरुष मुस्करा उठते। नये ज़माने का विद्यार्थी वर्ग उसकी पतलून की गुथली-नुमा सीट पर ही कई कसीदे बनाता। किन्तु शाहालमी दरवाज़े की खचाखच भीड़ में वह एक साहब की भांति चला जा रहा था। तांगेवाले आशा भरे नेत्रों से उसकी तरफ़ देखते, भिखारी ईश्वर के आगे उसके खज़ाने भरपूर रखने की दुआएं करते। कोई यह अनुमान न कर सकता था कि वह लाहौर की एक संकीर्णतम गली में एक शताब्दी पुराने घर के सबसे सील कमरे का अस्थायी स्वामी है, अथवा उसके आनन्द का एक मात्र साधन केवल एक टूटी हुई खाट है, जिसकी गहराई में लुप्त होकर वह कभी-कभी सारा दिन सिगरेट पीने में ही गुज़ार देता है।

यह होता भी कैसे ? आज वह जिस तेज़ रफ़्तार से भीड़ को चीर रहा है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि इस शहर में यह एक व्यक्ति है, जिसका हर क्षण कीमती है। उसके चेहरे पर व्यग्रता है और कुछ रौनक भी, कर्नल ने उसे घर पर बुलाया है। यदि कोई विशेष कारण न होता तो क्या आफ़िस में ही न बुला लेता ? यह रहस्य उसने अभी अपने घनिष्टतम मित्रों को भी नहीं बताया। पहले जब भी कोई ऐसा अवसर बनता था, वह लोगों से बात छिपाकर न रखता था, और अन्त में सभी की दृष्टि में उसे लज्जित होना पड़ता। उसका मित्र महेन्द्र कैसे चुपचाप जोधपुर के कालिज में लेक्चरर जा लगा, हालांकि सभी को उसने यही विश्वास दिला रक्खा था कि वह पत्रकार की नौकरी ढूँढ़ रहा है। और जमील, और रूपकिशन ? सभी अपने-अपने रहस्य को छिपाकर रखते थे और ईश्वर जाने कैसे उसी के अवसर छीन ले जाते थे। लेकिन आज इकबालनाथ को भी विश्वास था कि शगुन अच्छा है। अवश्य किसी ने उसके बारे में कर्नल से दो शब्द

कह दिये होंगे। पहले पहल वेतन कितना मिलेगा, एक सौ बीस। कितनी शान होगी। माँ कितनी प्रसन्न होगी, पिता भी आदर से बात करेंगे। अच्छा पहनने को मिलेगा, अच्छा खाने को। मित्रों के सामने भी वह घुल-मिलकर बातचीत कर सकेगा। यह संकोच, यह ग्लानि जो अन्दर ही अन्दर उसे कई महीनों से खा रही थी, हट जायगी। उसके जीवन का सर्वस्व एक नौकरी पर अवलम्बित था। यदि यह हो गया—यदि यह हो गया, तो वह कुसुमा को आज सारी रात बैठ कर एक लम्बा व्याकुल प्रेमपत्र लिखेगा। यदि आवश्यकता हुई तो संसार से छीनकर भी उसे अपना बना लेगा।

बाज़ार शनैः शनैः चौड़े होते गये, भीड़ व गन्दगी कम होती गई। दुकानों के थड़े बाहर से हटकर भीतर चले गये। सजी धजी शीशे की खिड़कियां दिखाई देने लगीं। मोटरों का तांता बंध गया। सिनेमा के मोहक पोस्टर लालायित करने लगे।

लारेन्स गार्डन में पहुँचने तक रात हो गई। चिड़ियाघर के पक्षी कभी अपने स्वतन्त्र वृक्षारूढ़ हमजिन्सों के साथ मिलकर गाते, कभी चुप हो जाते। इकबाल को ठंड लगने लगी। हाथों की उंगलियों में दर्द सा होने लगा। सोचा, यदि कर्नल के घर ठिठुरता हुआ पहुँचा तो बातचीत क्या करूँगा, ख़ाक। इसलिए कुछ दौड़ लिया। हाथों को बग़ल में देकर गर्म किया।

बंगले के बाहर पहुँचकर एक गन्दे रूमाल से बूट साफ़ किये, ताकि कर्नल जान सके कि ताँगे पर आया है। फिर आड़ में होकर बाल ठीक किये। मन को आश्वस्त होने का आदेश दिया, फिर बजरी पर महत्वपूर्ण आहट करता हुआ बंगले के अन्दर दाख़िल हुआ।

गोल दरवाज़े पर चपरासी कोई न था। यदि दिन होता तो कितनी देर बाहर लटकना पड़ता। लेकिन अफ़सरों की नियमावली से इकबाल को अब तक परिचय हो चुका था। उसने बढ़कर किवाड़ पर दबी सी दस्तक दी।

कर्नल कपूर स्वयं बाहर निकले और बड़ी भद्रता से कहने लगे—

'आइये, आइये, कम इन।'

इकबाल ने धन्यवाद कहा और अन्दर कदम रक्खा। कमरे का वायुमंडल बाहर की अपेक्षा खूब गर्म था। अंगीठी जल रही थी और उसके सामने आराम कुर्सियों पर दो युवक, एक युवती और एक छोटी बालिका बैठे थे।

'इतनी सर्दी में आप बिना ओवर कोट चले आये ? सचमुच नौजवानों को सर्दी कम लगती है।' कर्नल ने आश्चर्य से कहा।

दिल ही दिल इकबाल ने अपने आप को कोसा। क्यों न वह किसी से मांगकर ओवरकोट ले आया ? कई बार उसने अपने 'भावी' अफ़सरों को प्रभावित करने के लिए थर्ड से बदलवाकर सैकंड का टिकट कटवाया है, ताकि उनके साथ वाले डिब्बे में सफ़र कर सके, होटलों में कई शाम कड़वा बीयर का गिलास सामने रखकर बैठा रहा है कि कोई अफ़सर एक बार देख ले कि किसी अच्छे घराने का लड़का है। सैकड़ों रुपए इसी आडम्बर पर बर्बाद किये हैं, किन्तु आज के दिन इतनी आवश्यक बात एक दम भूल गया। "एक मित्र मांगकर ले गया था उसने वापस नहीं किया," आखिर उसने लापरवाही से हँसकर उत्तर दिया।

कर्नल से ऐसे सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव की इकबाल को बिल्कुल आशा न थी, वह अब तक भूल ही चुका था कि अफ़सर भी सजीव मनुष्य होते हैं।

कर्नल ने बड़े आदर भाव के साथ उसे अपने कुटुम्ब से परिचित कराया। अंगीठी के साथवाली कुर्सी पर बैठने के लिए बाधित किया जिस पर वह ख़ुद बैठा करते थे। कुछ देर एक स्वप्नवत् संसार में आलाप होता रहा। एक छोटा गिलास शैरी का भी इकबाल की भेंट हुआ। कुछ ही क्षण में उस पर उनकी साधारण नम्रता ने ऐसा जादू किया कि वह भूल ही गया कि मैं यहाँ हस्पताल की हाऊस सर्जिनी की खोज में आया हूँ। उसकी देर से सुप्त मानवता जागृत होने की चेष्टा करने लगी। अब चाहे नौकरी मिले, न मिले, इन लोगों ने मुझे अपने जैसा ही एक मनुष्य समझा, क्या यह काफ़ी नहीं ?

कुछ देर बाद कर्नल का इशारा पाकर लड़के लड़कियां उठकर चले गये। रेडियो भी बन्द हो गया। कर्नल और वह आराम से एक दूसरे के सामने बैठकर बातें करने लगे। इधर उधर की, उधर इधर की। जिस आराम और सुख की सामग्री के इकबाल स्वप्न लेता था, वह सब यहां मौजूद थी। और कर्नल की बातों से यह कदापि सूचित न होता था कि वह कोई पराया आदमी है।

'आपका स्टूडेन्ट कैरियर इतना अच्छा रहा है, आप विलायत क्यों नहीं जाते ?'

'जाऊँगा तो अवश्य, मुझे सर्जरी में बेहद दिलचस्पी है, किन्तु मेरी आर्थिक परिस्थिति अभी कुछ अच्छी नहीं है। मेरे पिता रुपए का इन्तज़ाम तो कर सकते हैं, किन्तु दरअसल बात यह है कि वह मुझे

ठीक पहचानते नहीं। मैं भी स्वतन्त्र तबीयत का आदमी हूँ और जब तक उन्हें दिखा न दूँ कि मैं अपने पैरों पर खड़ा हो सकता हूँ मैं उनसे बेदिली से दी हुई सहायता लेना नहीं चाहता।'

कर्नल का रुचिपूर्ण समर्थन पाकर इकबाल बोलता ही गया। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्यों इस आवेश में आ गया है, लेकिन अपने आपको रोक न सका। अपने जीवन की सभी महत्वाकांक्षाओं को, सभी अड़चनों को गिन गया। जो प्रशंसा-पत्र साथ लाया था, दिखाना भूल गया, जिन बड़े आदमियों से कुछ दूर के रिश्ते थे, उनके नाम भी न लिये। यही जताने की कोशिश करता रहा कि संसार में मैं भी कुछ हूँ। मैं क्या नहीं कर सकता। कर्नल सहज मुद्रा में बैठा सब सुनता रहा, किन्तु कोई टीका टिप्पणी न की। यदि इक-बाल को वह रहस्यपूर्ण चेहरा केवल सौहार्दपूर्ण व सूक्ष्मदर्शी दिखाई दे रहा था, तो इसमें कर्नल का कुछ कसूर न था।

आख़िर बात ख़त्म हुई। कर्नल ने अन्त में केवल इतना कहा कि वह कुछ दिनों बाद इकबाल को सूचित करेंगे। उन्हें अपने डिपार्ट-मेन्ट में निःस्वार्थ एवं आत्मनिर्भर नवयुवक की ज़रूरत थी और वह प्रसन्न थे कि इकबाल एक ऐसा ही नवयुवक है। किन्तु निश्चित कुछ कह नहीं सकते।

इकबाल ने मुस्कराकर सिर हिलाया और बड़े उत्साह के साथ कर्नल के प्रस्तुत हाथ को अपने हाथ में लिया और यह कहकर कि—

'नौकरी मिले या न मिले मेरे लिए यह बात कोई महत्व नहीं रखती। मुझे आप जैसे व्यक्ति को मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यही काफ़ी है'—विदा हुआ।

जब वह बाहर निकला तो कर्नल साहब ने अपने मित्र भाव का एक अन्तिम परिचय दिया—

"सर्दी बहुत है। मेरे पास एक दूसरा ओवर कोट है यदि आपको एतराज़ न हो तो शौक से ले जाइये, कल आफ़िस में भेज दीजियेगा।"

इकबाल के लिए आत्म-सम्मान की इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती थी ? नौकर ओवर कोट ले आया। कर्नल ने स्वयं पहनाने में मदद दी और कहा—'यह तुम्हें खूब फबता है।'

अन्धकार में फिर विलीन होकर इकबाल ने ओवर कोट के कालर ऊपर उठा लिये और जेबों में हाथ डालकर उल्लास-पूर्ण हृदय से चलता बना, जैसे कोई भटका हुआ सैनिक रात भर किसी आनन्दमयी कुटिया में विश्राम पाकर वापस युद्धक्षेत्र में जा रहा हो।

कुछ कदम जाकर उसने देखा कि दाएं जेब के कोने में एक दुअन्नी पड़ी है। उसने सोचा, वापस दे आऊं, लेकिन फिर कहा—'पड़ी रहने दो, कौन सी बड़ी रकम है।' लेकिन इसके बाद उसे बाक़ी जेब टटोलने का भी कौतूहल हुआ। जब अन्दर के जेब में हाथ डाला तो देखा कि एक पांच रुपए का नोट और कुछ नकदी पड़ी है। इकबाल ने निश्चय किया कि अब इन्हें वापस न करना ज़्यादती है। लौटकर फिर दरवाज़ा खटखटाया। किन्तु इस बार शुष्क से स्वर में एक आवाज़ हुई—

"कम इन।"

लड़के लड़कियां फिर आ गये थे। रेडियो फिर बज रहा था। उसे देखकर वे सकुचा गये और कर्नल की आँखो में भी यत्किंचित् आक्षेप की रेखा दिखाई दी। उनकी आशंकाओं पर जल्दी पानी फेर देने के लिए इकबाल ने वह नोट और पैसे कर्नल को पेश किये।

"ये आपके कोट में पड़े थे।"

कर्नल ने विस्मित होकर रुपयों की ओर देखा—

"ये कहां से आये? यह तो पुराना कोट है, मैंने कभी पहना ही नहीं।"

"बाहर के कोट में एक दुअन्नी पड़ी थी। सोचा हज़म कर जाऊं, किन्तु जब यह रकम अन्दर के जेब में पाई तो ठीक यही लगा कि लौटा आऊं।"

इसकी यह टीका हास्योत्पादक न हुई।

कर्नल ने केवल इतना कहा—"अच्छा, थैंक यू।"

कर्त्तव्यपालन कर, कालर को ऊपर उठा, इकबाल ने अन्धकार में अपनी यात्रा पुनः आरम्भ की। किन्तु अब उसके मन में कुछ आशंकायें उत्पन्न हुईं। दूसरी भेंट में अवश्य कुछ अन्तर था। जैसे उसे दूसरी बार घुसने का कोई अधिकार नहीं था, चाहे उन्हीं का धन लौटाने जा रहा हो। नहीं नहीं, केवल विस्मय था, शुष्कता न थी। दूसरी बार जाना भी तो अनावश्यक था। पैसे कल लौटा दिये जाते। या न भी दिये जाते तो क्या था। कर्नल को तो याद भी न थे। न न, जीवन में कुछेक सद्नियमों का हमेशा पालन करना चाहिये। हो

सकता है कि यह त्याग भी उसे नौकरी के निकट ले जाने में सहायता करे।

मन में एक विचित्र वाद-प्रतिवाद शुरू हुआ। इन्हीं पांच रुपयों से वह एक सिनेमा देख लेता। महीने गुज़र चुके थे कोई फ़िल्म देखे हुए, किसी भी विलास का अनुभव किये। उसके बाद किसी रेस्टरां में टांगे पसारकर मुर्ग व रोग़न जोश पर हाथ साफ़ करता। तदनन्तर फ्रूट-क्रीम का मज़ा लेता। न कर्नल की अमीरी में न उसकी अपनी ग़रीबी में इन पांच रुपयों से कुछ अन्तर पड़ता। संसार में केवल यही पांच रुपए थे जिनका एक-एक पैसा मानवीय मनोविनोद का कारण हो सकता था।

ईश्वर जाने नौकरी मिलेगी भी या नहीं। बड़े लोगों की नज़रों का भी कोई भरोसा है ? कितना गधापन किया, बेलगाम होकर बकता गया। कभी ऐसी असंगत और मूर्खतापूर्ण भावुकता से अफ़सर लोग भी प्रेरित हुए हैं। यह भी संभव है कर्नल पहले ही किसी अपने सम्बन्धी को चुन चुका हो। क्या अमीर ग़रीबों को वृथा नचाकर तमाशा नहीं देखते ? कितने ही उसके मित्र ऐसे थे जो कालिज के दिनों में इतने लम्बे-लम्बे वचन देते थे और अब मोटरों में बैठे मुंह फेरकर निकल जाते हैं। कल फिर दिन चढ़ेगा और हज़ार कठिनाईयों व असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा। किन्तु यह पांच रुपए कम-अज़-कम इस रात्रि को सौरभमय बना सकते थे। इनके बल पर भविष्य का आलोचन आशादीपित हो सकता था। फिर ? नौकरी अवश्य मिल जायगी। वरना कर्नल को पहले तो उसे घर ही बुलाने की और दूसरे इतनी आत्मीयता दिखाने की ज़रूरत ही क्या थी ? यदि उत्साहित न करना होता तो भला यह और वह क्यों कहता ? क्या संसार से कृपा भाव बिल्कुल लुप्त हो गया है ? कभी नहीं। दूसरी बार भी कर्नल इतना कोरा नहीं था जितना कि उसे प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार कभी अपने आपको आश्वासन और कभी कष्ट देता हुआ वह चला जा रहा था। यदि बिजली के खंबे के नीचे बैठा हुआ कोई भिखारी अपना हाथ बढ़ाता, तो इकबाल सोचने लगता—

'इन पांच रुपयों से मैं कम से कम तीस भिखारियों को भरपेट भोजन करा सकता था। और एक उदार-हृदय सम्राट की भांति उनके आशीर्वाद लेकर आराम से घर जाकर सो रहता।'

पांच रुपए उसके मन में विचित्र उन्माद पैदा कर रहे थे, क्यों कि उसकी नज़रों में वे रुपए किसी एक व्यक्ति का द्रव्य न थे। वह फूलों की तरह संसार में खिलने खेलने के लिए आये थे, किन्तु उसकी मूर्खता-वश फिर कैद में ढकेल दिए गए। वे रुपए क्या न कर सकते थे? महीना भर उसके कमरे में बिजली की रोशनी जलवा सकते थे। उसमें दो महीने तक रोज प्रातः-काल झाड़ू दिलवा सकते थे। कई दिन तक उसे लाल लाल काश्मीरी सेब खिला सकते थे। सोलह जोड़े जुराबों के ला सकते थे, दो एक टाइयाँ ख़रीद सकते थे।

क्रमशः बाज़ार संकीर्ण होते गये। सजी धजी शीशे की खिड़कियाँ दूर रह गईं। मोटरों के स्थान पर तांगों की घंटियाँ सुनाई देने लगीं। दुकानें अन्दर से हटकर बाहर आ गईं। भीड़ और गन्दगी बढ़ने लगी।

इकबाल ने नियम-पूर्वक एक महरे की दुकान में प्रवेश किया। छोटे से बक्स को चाबी लगाकर, उसमें से घी निकालकर तन्दूरवाले को दिया। खाना खाकर सनलाइट सोप की घिसी हुई चाकी से हमाम की दातन-जटित टूटी पर हाथ धोकर पास लटकते हुए गीले तौलिए से पोंछे। तत्पश्चात् ओवर कोट के बटन खोलकर सूटवाले कोट के जेब में पैसों के लिए हाथ डाला। लेकिन ओह! बेचारा सुनहरी स्वप्नावस्था में अपना ही ख़ज़ाना कर्नल को भेंट कर आया था।

वापसी न वापसी

लंगड़ू नूरअहमद ने सर्गी की निमाज़ पढ़ते वक्त कुछ तोपें दगती सुनी थीं। उसके बाद चपरासियों को नई वर्दियां पहने इधर-उधर दौड़ते हुए देखा था। लेकिन परवरदिगार की दरगाह से यह पूछने की कोशिश न की कि माजरा क्या है। नियमानुसार खुदावन्दे ताला से सारे काश्मीरियों की, और विशेषकर दारोग़े की, चमड़ी कुत्तों के आगे डालने की दुआ करके वह चुपचाप अपनी लोई की तहों में सिमट-कर बैठ गया, और कई घंटे बैठा रहा।

नियमानुसार बारह बजे लोहे का बड़ा फाटक कड़कड़ाया और दारोग़ा साहब ने अपनी छड़ी घुमाते हुए प्रवेश किया। उन्हें देखते ही नूरअहमद ने नियमानुसार अपना छः फुट चार इंच लम्बा शरीर एक टांग के भार उभारा और बड़े परिश्रम से गला साफ़ करते हुए तोला भर बलग़म दालान में थूक दी। इस स्वागत-करण पर आज

दायें बाएं की कोठड़ियों से हंसी की बजाय प्रतिवाद उठा, जिससे एकान्त-वासी नूर अहमद को पता चला कि आज महाराज का जन्मदिन है और शायद कुछ कैदी छूट जायेंगे।

यदि आठ साल इन तोपों के दगने का कुछ असर नहीं हुआ तो आज होगा, इसकी लंगड़ू नूरअहमद को आशंका न थी। लेकिन जब पिछले सालों की तरह कैदी कोठरियों में से लोइयां सम्हालते हुए निकले, तो नूर सोचने पर बाधित हुआ कि अब उसका पत्नी की जवानी पर एक साल और पड़ जायगा।

और जब उसकी कोठरी के आगे से गुज़रते हुए दारोग़ा साहब के कदम सहसा रुक गये तो उसका दिल भी रुक गया, और उसकी लाल आंखें डबडबा गईं।

कुंजी ताले में फिरी और उसे बाहर निकलने का आदेश हुआ। निकलते ही दारोग़ा साहब ने एक ऐसा चौरस थप्पड़ उसकी गर्दन में दिया कि उसकी टोपी मिट्टी में जा पड़ी। लेकिन उसे उठाकर नूरू अपनी मस्तमौला चाल से चलता गया। वह दिन पूरे हो चुके, जब थप्पड़ उसके मस्तक पर बल डाल सकते थे। कमखुश्किस्मत कैदी अपनी-अपनी कोठरियों से पूरी हार्दिकता के साथ उसे अलविदा कह रहे थे, लेकिन उसने न सुना, न ही यह सोचा कि उसके जाने के बाद उनका वक्त कैसे गुज़रेगा। किसी ने, ज़माने की हास्यास्पद रीति के अनुसार एक पुरानी कपड़ों की थैली उसे ला दी। किसी ने पैसे दिये, किसी ने अंगूठा लगवाया, किसी ने मशीन पर चढ़ने को कहा। नूरू मन्त्र-मुग्ध की भांति सब कुछ करता और अपनी बड़बड़ाहट से कर्मचारियों का दिल-बहलाव करता रहा। फाटक के बाहर पहुंचकर उसने बाक़ियों से आगे बढ़कर छाती पर हाथ रखा और अपनी गुस्ताख़ियों के लिए

दारोग़ा साहब के आगे सिर झुका दिया। अपने इस अन्तिम मसख़रेपन पर लोगों का हास्य सुनता-सुनता वह पहाड़ से नीचे उतरने लगा।

दस पंद्रह कदम उतरकर वह ठहरा। एक बार श्रीनगर के शहर पर और चारों ओर की फ़सल पर नज़र घुमाई। अपने मुहल्ले को पहिचानने की कोशिश की। झील पर नन्हें-नन्हें शिकारों को रींगते हुए देखा। फिर आश्वस्त हो, अल्लाह का शुकर कर, उतरने लगा। सड़क पर क़ैदियों के सम्बन्धियों का जमघट सा लग रहा था। चीं-चपड़ का बाज़ार गरम था, जिसे देखकर उसे नफ़रत हुई। स्वतन्त्रता की कल्पना करते समय उसने यह कभी न सोचा था कि बाहरी संसार में रोना धोना भी होगा।

फिर भी उसकी गर्दन, जनसमूह से ऊपर उभरी हुई, घूम घूमकर किसी को खोजने लगी। किन्तु थोड़ी देर बाद निराश हो गई और वह चल निकला। यह देखकर भीड़ के सम्पर्क से दूर पुल पर बैठा हुआ एक नवयुवक उठा और नूरू की ओर चला। उसकी दाढ़ी पान के पत्ते की तरह तराशी हुई थी, रंग गोरा था, और वह हरे कोट व सफ़ेद लाल पट्टे वाली, पगड़ी में सुसज्जित था। नज़दीक आकर अकस्मात् उसने नूरू के पांव छू दिये। नूरू सटपटा गया, और आवश्यक 'वार छुस' 'ख़ैर छुस' के बाद खिसकने लगा। स्वच्छ कपड़े पहनने वालों से उसे सख़्त नफ़रत थी। लेकिन नवयुवक ने उसकी बांह पकड़कर कहा।

'लाला मुझे पहचाना नहीं ?'

नूरू तै न कर सका कि यह विनोद है या यथार्थ। उसने

नवयुवक को सिर से पैर तक देखा। न, न, यह छेड़खानी नहीं थी। नवयुवक की आंखें सरल थीं और उनमें कुछ न कुछ नाहक उसे अपनी ओर खींच रहा था। नवयुवक ने कहा—

'लाला, मैं हबीब हूँ।'

'ओ हबीब ? ओ बेशरम ?' नूरू ने नवयुवक को छाती से लगा लिया। उसकी लाल आंखें फिर उमड़ आईं और उसकी मुस्कराहट सुख और दुःख की सीमाओं में निरर्थक सी पंक्ति खींचने लगी। लेकिन नवयुवक को यह भावुकता अच्छी न लगी, क्योंकि इसमें कई महीनों के बिन नहाये शरीर की बू थी। वह अलग होने की कोशिश करने लगा।

'हबीब ? ओ बेशरम ? तू इतना बड़ा हो गया।' पिता ने पुत्र को फिर से निहारते हुए कहा।

'लाला, आठ साल हो गया।'

'हां, आठ साल हो गया।' नूरे ने सांस छोड़ते हुए कहा और दोनों आगे बढ़े।

कुछ देर की चुपचाप के बाद हबीब ने गंभीरता के साथ पूछा : 'लाला, अब तुम क्या करोगे ?'

नूरू को यह प्रश्न भद्दा सा मालूम हुआ। आठ साल की पाशविक कैद से छुटकारा पाकर दोज़ख की पहाड़ी से अभी उतरा हूँ और मेरे पुत्र के पास स्वागतकरण का केवल यही साधन है कि मुझसे पूछे कि अब मैं

क्या करूँगा ? क्या इसे किसी ने नहीं सिखाया कि ऐसी बात नहीं कही जाती ? नूरू खिन्न हो गया। यह वह हब्बू नहीं था जो पुलिसवालों के जतन करने पर भी बाप के कन्धे से नहीं उतरता था, जिसके रोते हुए चेहरे की स्मृति ने उसके जीवन में तूफ़ान पैदा कर दिया था। इस पान के बादशाह की सी दाढ़ी और अकड़े हुए कपड़ों वाले को अपने बाप से शरम आती थी। शायद रहती भी इसी कारण नहीं आई। क्यों आये ? कभी चोर के घर आने पर भी किसी को खुशी हुई है ? लेकिन नहीं, नहीं। उसने प्रेम भरे नेत्रों से अपने पुत्र की ओर देखा। कितना सुन्दर चेहरा था, कितना पौरुष डील डौल। कुछ दिनों तक ये लोग स्वयं ही देखेंगे कि नूरू कितना बदल चुका है। लेकिन रहती क्यों नहीं आई ? कहीं बीमार न हो, कहीं मर ही तो नहीं गई ? भला पूछूँ तो ? फिर रुक गया। हब्बू सोचेगा, बाप कितना निर्लज्ज हो गया है। उसे अब यह अवसर नहीं देना चाहिये। उसने पुत्र के सवाल का जवाब सवाल में दिया—

'तू अपना अहवाल सुना।'

हब्बू का चेहरा तमतमा गया। वह इसी इन्तज़ार में था। उसके वरदी पहनकर आने, व बाकी लोगों से अलग होकर बैठने का अभिप्राय ही यह था कि संसार जान ले कि वह मामूली आदमी नहीं है। शायद उसे देखकर बाप को भी उपदेश मिले कि स्वच्छता व पारसाज़ी बुरी वस्तु नहीं। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में ही उसके जीवन की महत्वाकांक्षाएँ बर आई थीं, यह श्रेय किस किसको हासिल होता है ? वह एक प्रभावशाली अँग्रेज़ का बैरा है। दिन रात, जीवन का एक एक क्षण साहब की सेवा में व्यतीत करता है। घर जाना, अपने सम्बन्धियों के मुहल्ले तक में कदम रखना उसे मुसीबत है। कई सड़कें ऐसी हैं, जिन पर से गुज़रने की बजाय दो मील का चक्कर काटना

उसे ज़्यादा मंजूर है। ऐसा बाप, और अब ऐसी माँ, बिरादरी तो उसे कच्चा चबा डाले।

'मैं राम-मुन्शी-बाग़ में गिटमैन साहब की कोठी पर नौकर हूँ। दो साल हुए काम शुरू किया था। पहले झाड़-फूंक व बूट पालिश का काम मिला, फिर साहब ने मेरी ईमानदारी और परिश्रम की दाद देकर मुझे अपने कारखाने में चपरासी लगा लिया। अब दो महीने से बेरे का काम कर रहा हूँ। बीस रुपए तलब मिलती है और रोटी कपड़ा साथ में। साहब बहुत ही नेक आदमी है। उसकी फ़ैक्टरी में दो सौ आदमी काम करते हैं लाला, दो सौ। महाराज के साथ पोलो खेलता है। दो मोटरें रखी हैं उसने, जिधर से निकल जाती हैं जहान देखता है। पिछले हफ़्ते मुझे अपने साथ बिठाकर गुल्मर्ग ले गया था। कहा तो कुछ जाता नहीं, पर लाला, अल्ला रहम करे और मेरे ईमान को बरकत बख़्शे, साहब आगे और भी मेहरबान होगा। ख़ुदा जानता है कि रात को तीन तीन बजे कलब से आता है और उसकी जेबों में सैकड़ों रुपए होते हैं। अगर चाहूँ तो पांच दस रोज़ इधर उधर कर दूँ लेकिन हराम की एक पाई मुझे मंजूर नहीं....'

लंगड़ू नूर अहमद को और सुनना असह्‌ हो गया। देखो लंगूर की तरफ़। बजाय इसके कि मर्यादानुसार पहले अपनी माँ का, फिर दूसरे साक-सम्बन्धियों का कुशल समाचार दे, इसे अपने साहब की पड़ी है। और फिर इसकी यह जुर्रत कि अपने बाप को धर्म ईमान का उपदेश देना शुरू कर दे ? लानत है। उसने काटकर कहा—'ख़ैर, बहुत अच्छा। लेकिन बेटा, जो शख़्स बाहर से आये उसे पहले बुजुर्गों का हाल अहवाल देना चाहिये, अदब यही सिखाता है।'

'ऊँह, उनका क्या है ?' हब्बू ने उपेक्षा से कहा—'जिस गन्दगी

में आगे सड़ रहे थे उसी में अब भी पड़े हैं। वही गंदा पानी पीते हैं, साल भर नहाते नहीं, सारा दिन फ़िज़ूल बकबक में गुज़ार देते हैं। बाबा अहदजू के पास जो कुछ था, वह शराब और जूए की नज़र हो गया है और अब घरवाली को लातें जड़ने के सिवा उन्हें कोई काम नहीं। लाला इन लोगों से मुझे नफ़रत हो गई है।'

चिनारों से घिरी हुई अब वह पुरानी सड़कें न थीं, उनका स्थान चौड़े-चौड़े चिकने मैदानों ने ले लिया था, जिन पर चर्र-चर्र करती हुई मोटरें इधर से उधर भाग रही थीं। चौराहों पर सिपाही कौतुक-पूर्ण अन्दाज़ से हाथ हिला रहे थे और बार-बार नूरू को आस-पास के थड़ों पर चलने का आदेश करते, जिन पर उतरने चढ़ने में उसे दिक्कत होती। हर तरफ़ परिवर्त्तन, स्वच्छता की बू आ रही थी। नदी के आस पास बेंत के वह जंगल, जिनमें कई दोपहर उसने छिपकर चरवाही युवतियों के संग बिताये थे, अब कहीं नज़र नहीं आते। आठ साल के अन्दर नूरू का काशर देश बिल्कुल बदल गया था। 'मैंने सुना है फ़िरंगी हराम की चीज़ भी खाते हैं, क्या यह ठीक है ?' नूरू ने विष भरे स्वर में कहा।

हबीब का उन्नत मस्तक इस प्रश्न पर गिर गया। बेशक खाना पकाना खानसामा का काम था, लेकिन प्लेट पर धरकर लाता तो वही था। उसके जी में आया कि स्पष्ट कह दे कि चोरी के मुक़ाबले में यह काम बुरा नहीं है, लेकिन आखिर बाप था। वह यह धृष्टता न कर सका। नूरू को भी पश्चाताप हुआ। यह माना कि उसने अपने पुत्र के लिए सदैव किसी उज्ज्वल और स्वतन्त्र जीविका की कल्पना की थी, लेकिन इस कैद की लम्बी अनुपस्थिति ने सब बरबाद कर दिया। इसमें हब्बू का क्या कसूर ?

कुछ दूर तक फिर दोनों चुपचाप चलते गये। आखिर नूरू से रहा न गया—

'रहती क्यों नहीं आई, ठीक तो है न ?'

'हाँ ठीक है'—हब्बू ने गुनगुना सा जवाब दिया—'मुझे काम ज़्यादा था इसलिए कोठी से सीधा इधर ही आ गया।'

अब वह सड़क के आर पार बनाये गये एक ऊँचे फाटक के पास पहुँचे जो टहनियों और फूलों से लदा हुआ था। इससे आगे रंग बिरंगी झंडियों का एक तांता सा लगा हुआ था दूकानें सजी हुई थीं और स्थान-स्थान पर सुनहरे अक्षरों से जटित कपड़े लटक रहे थे।

जन्मोत्सव की इन निशानियों को देखकर नूरू को पहले महाराज की याद हो आई। तब मोटरें भी न थीं और यह चौड़ी सड़कें भी न थीं। फ़ौजी डोगरे एक कन्धे पर बन्दूक और दूसरे पर चिलम थामकर पहरा दिया करते थे। कितना शरीफ़ था बूढ़ा महाराज। जाते जाते हज़ारों ख़रायत कर जाता था। जिस दिन थोड़े पड़े, डेवढ़ी में जा घुसे। दाल भात नसीब हो जाता था। सिपाही को चौथे पांचवें दिन एक विलायती सिगरेट पिला दो, फिर चाहे वज़ीर का जेब कुतर लो। आह वे दिन....

अकस्मात् हबीब ठहर गया और कलाई पर लगी हुई घड़ी को देखते हुए बोला—

'लाला, अब इजाज़त दो, मुझे काम है। शाम को आऊँगा।'

नूरू को जैसे किसी ने नश्तर चुभो दिया हो। इसे बाप को घर तक छोड़ आने की फ़ुर्सत नहीं। उसके हाथों में जलन हुई, लेकिन पहले दिन ही कान पीस देना ठीक नहीं होगा। कल सही।

इसके बाद लंगड़ा नूर अहमद अपनी मद्धम चाल से चलकर अपने मुहल्ले में पहुंचा। काले कीचड़, बाकरखानी तथा सड़ी हुई मछली की बदबू एक साथ सूंघते ही उसने अपने शरीर में एक नयी जान महसूस की। किसी कंजूस बनिये की तरह जिसे परदेस से लौटते समय ही आशंका बनी रहती है कि मेरा घर कहीं लुट न चुका हो, वह धड़कते हुए दिल से ठहर ठहरकर प्रत्येक स्थान को पहचानता। उसे तसल्ली हुई कि उसका कोई समव्यवसायी मुहल्ले के दो एक मकान उड़ा नहीं ले गया।

अपनी गली के सिरे पर पहुँचकर उसने बिस्मिल्ला कही और अन्दर प्रवेश किया। लेकिन, न जाने क्यों, वही दीवारें जिनकी ओर कभी उसने आंख उठाकर देखने की पर्वाह न की थी, आज उसे खाने को दौड़ीं। उनकी ईंटें उसे अपरिचित सी मालूम हुईं जैसे पूछ रही हों—'तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या काम है?' दीवारों से नूरू को वैसे भी अब डर लगता था, मगर यह तो रास्ता ही रोक रही थीं। नूरू ने यह सोचा शायद वह किसी दूसरी गली में घुस आया है और वापस मुड़ा। एक क्षण के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ शायद वह मरने के बाद अपनी कब्र से उठकर चल पड़ा है। उसने रहती, अपनी पत्नी, के चेहरे को याद करने की चेष्टा की, लेकिन वही रेखाएं जो जेल में हर दम उसके सामने रहती थीं अब दूर, किसी धुंधले संसार में जा बसी थीं। बाज़ार में पहुँचकर उसने फिर गली को परखा। गली तो वही थी।

इतने में अन्दर से एक ढोल की तरह मोटी अधेड़ उमर की हबशी, हाथों को फिरन के अन्दर छिपाये हुए, अपनी छातियों की विपुलता

को कांगड़ी का सेंक देती हुई, आती दिखाई दी। नूरे को देखते ही अपनी छोटी छोटी दाग़ी सेब की सी, आंखें नचाती हुई चिल्ला उठी—

'वाह रे मेरे नागराई—य, वाह रे मेरे रांझिये, वाह रे मेरे कौंग पोश।' फिर हँसते हँसते लाल हो गई। फिर पास आई और नूरू की बांह थामकर मुहल्लेवालों को पुकारने लगी कि उसका नागराई वापस आ गया है।

लेकिन उस मूर्खा के नागराई रोज़ वापस आते थे, इसलिए मुहल्ले में कोई हरकत पैदा नहीं हुई। उदास सी होकर वह उसे लेकर एक थड़े पर बैठ गई।

नूरू ने उसे शोर करने से मना किया और कहा—'देखो मैं थका हूँ, मुझे घर जाने दो, छेड़ो मत।'

स्त्री ने नटखट अन्दाज़ से हाथ उठा लिये और उन्हें अपनी जांघों पर पटकती हुई बोली—'जाओ, तुम्हें रोकता कौन है, मगर जाओगे कहां?'

'क्यों रहती घर पर नहीं?'

स्त्री अपनी भयानक हँसी से फिर लोट पोट हो गई।

'रहती? अरे काफ़िर, तुझे इस बेहूदा ढंग से बात करते हुए लाज नहीं आती? बेगम अख़्तरी जान नोशेलब को रहती पुकारता है?'

चुड़ैल का व्यंग नूरे की समझ में न आया। आख़िर उसे काबू

करने के एकमात्र उपाय का आश्रय लेते हुए उसने स्त्री की ठोड़ी हाथ में लेकर दस पन्द्रह लगातार अश्लील वाक्य कह डाले कि वह पसीज गई और शरमाती हुई बोली—

'रहती ने धन्धा कर लिया है। वह जो दरिया पर झुका हुआ मकान है, वह जिसके छज्जे पर फूलों के गमले हैं और ऊपर मैना का पिंजड़ा है, हां, उसी में बैठती है।' यह कहकर वह रोने लगी।

नूरू उठा और अपनी टोपी को हाथों में टटोलता हुआ इस नये घर की ओर दृष्टि बांधकर चला।

मकान की सीढ़ियों के पास एक क्षीणकाय, लम्बे और खूब संवारे हुए बालोंवाला व्यक्ति खाट पर बैठा हुक्का पी रहा था। लंगड़ू को ऊपर जाते हुए देखकर दुत्कार कर बोला—'ओ हतो, कहां जाता है?'

नूरू रुका नहीं।

व्यक्ति अपनी गुड़गुड़ी छोड़, लोई के आराम को स्थगित कर, उस पर लपका, लेकिन कुछ क्षण बाद उसी तेज़ी के साथ लुढ़कता हुआ सीढ़ियों से वापस आ गिरा और कुछ सोचकर फिर तम्बाकू पीने लगा।

नूरू एक बन्द से विलास-गृह में दाख़िल हुआ। फ़र्श पर लाल गब्बा बिछ रहा था, और उस पर, कोने में, तकियों से सजी हुई एक सफ़ेद चादर। खिड़कियां बन्द थीं और बत्ती जल रही थी। उसका प्रकाश खिड़कियों के आगे लटकी हुई रंग-बिरंगे मोतियों की झालरों,

दीवार के साथ टंगे हुए एक चौड़े शीशे, अथवा कुछेक अधनंगी तस्वीरों में छलक रहा था। उसकी रहती सिल्क की रज़ाई ओढ़े, आंखों में हल्का सा काजल डाले, सिरहाने कुछ फूल रखे हुए, चौड़ी शय्या पर सो रही थी।

नूरू अपनी सालम टांग के बल खड़ा होकर बेहोशी के आलम में उसे देखता रहा। यदि वह इस समय उसे छुरे से काट देता, या उसके साथ जा लेटता, तो यह दानों ही घटनायें असंभव न थीं। लेकिन वह निश्चल खड़ा रहा। ऐसी परिस्थिति का उसे स्वप्न में भी सामना न हुआ था। वेश्याओं के पास वह जा चुका था, लेकिन उनमें से कोई भी न इतनी सुन्दर, न उसकी पत्नी थी।

हठात् रहती ने आंखें खोलीं। विश्वास न कर सकी और उठ बैठी। उसके आतंक में अपनी भार्या की झलक नूरू को मिली, उन दिनों की जब सड़क ही पर वह उसे पीटने लग जाया करता था। पहचान से मुहब्बत और चाह जाग्रत हुई। चिल्ला उठा—

'ओ हरामज़ादी, खंज़ीर की बच्ची, तुझसे इस नापाक कुतियापन के बग़ैर रहा न गया? ओ तेरे बाप की नसल दोज़ख में जाय। मैं वहां आग में जलता रहा और तू यहां गलछर्रे उड़ाती रही। ओ....'

पेश्तर इसके कि अपनी आवाज़ से अधिकाधिक उत्तेजित होने का पुराना सिलसिला जारी हो जाता और क्रमशः नौबत हाथ उठाने पर पहुँचती, रहती ने रोना शुरू कर दिया। यह रोना वास्तविक था या नहीं, केवल रहती ही जाने। वह कुछ न कुछ बदल चुकी थी। उसके चेहरे का अल्हड़पन बदस्तूर क़ायम था, लेकिन अब वह उससे

काम लेती थी। यह भी जान गई थी कि जितना थोड़ा काम लिया जाय प्रतिक्रिया अधिक होती है। जीवन में पहली बार उसे अपने खाविन्द के प्रति इस धारणा से प्रेरित होने का सौभाग्य मिला कि वह बेवकूफ़ है।

आधा घंटा बीता। नूरू उसे क्षमा कर चुका था। वह पास बैठी रूंधे कंठ से अपनी अगण्य विपत्तियों का हाल कह रही थी। नूरू सहानुभूति के साथ सिर हिला रहा था। बेशक वह भी सच्ची थी। वह क्या करती ? लोगों ने उसे यह नहीं बताया कि उसके अज़ीज़ को किश्तवाड़ में ले जाकर बन्द किया गया था, बल्कि यह बताया कि उसे कलकत्ते ले गये हैं। सम्बन्धियों ने मुंह मोड़ लिया, खाती कहा से ? पुत्र भी ऐसा पामर निकला कि साहबी के चकमें में आकर अपनी माँ तक को भूल बैठा। दो बार वह दरिया में कूद पड़ी, लेकिन बदनसीब को लोगों ने निकाल लिया। उसके वास्ते और क्या चारा था ? फिर भी उसने किसी काफ़िर को अभी तक नहीं छुआ, हालांकि पैसे ज़्यादा देते हैं। पांच बार नमाज़ें पढ़ती थी।

अच्छा जो हुआ सो हुआ, नूरू ने कान में दियासलाई फेरते हुए कहा---लेकिन अब रवैया बदलना होगा। मौजूदा हालत दोनों ही के गुनाहों का नतीजा है, वरना बेटा ऐसा गंवार न निकलता। रहती को शरीफ़-ज़ादियों की तरह फिर से मैले कपड़े पहनने होंगे, और मुंह धोना भी दस बीस दिन के लिए स्थगित करना होगा। सिर में राख डालकर बाल सीधे कर डालने होंगे, ताकि ज़माने का कटाक्ष न रहे। रहती सहमत हो गई, उठी, और शीघ्र ही वेष बदलकर पुरानी हो गई।

उसके बाद वही हुआ, जिसकी गली-मुहल्ला अब तक प्रतीक्षा में था। बेगम अख्तरी जान नोशेलब के चबारे में अकस्मात् बला की

चीख पुकार शुरू हुई। तसवीरें और मोतियों की झालरें गर्मियों की बारिश की तरह यकायक बाज़ार में टपक पड़ीं। श्रोताओं ने न केवल मर्द के बच्चे के प्रचंड गर्जन की दाद दी, बल्कि किश्तवाड़ से आई हुई कई गालियां अपने शब्द-कोष में जोड़ लीं। अख़्तरी जान नोशेलब का चीत्कार मुहल्ले के दरो-दीवार को कम्पायमान करने लगा। टफ़....टफ़....जूतियों की, थप्पड़ों की, छड़ी से पीटने की आवाज़ें आने लगीं।

फिर लोगों ने देखा कि बेगम नंगे सिर सीढ़ियों से लुढ़ककर नीचे आ रही है। उसके पीछे लंगड़ू, पलग का एक रंगीन पैर हाथ में लिये हुए जल्दी से उतरने में असफल हो रहा है। सड़क पर पहुँचते ही बेगम एक कोने में सर पटक पटककर लगी विलाप करने।

नूरू ने उसे तो वहीं छोड़ा, अब किंकर्तव्यविमूढ़ चारपाई पर आसीन दलाल के संवारे हुए बालों को थामा। सड़क पर घसीटकर उसकी खोपड़ी को ऊबड़ खाबड़ पत्थरों पर ठोका और कमर में तीन चार घूँसे दिये। दो क्षण ही में उसे संज्ञारहित लोथड़े की तरह चित्त कर दिया।

अब नूरू ने बेगम को चुटिया से पकड़ा और ले चला उसका वितस्ता नदी में अन्तिम संस्कार करने। जनता, जिनमें कई बेगम के प्रेमी रह चुके थे, अब बरदाश्त न कर सकी। सैकड़ों की तादाद में लोग जमा हो चुके थे। अब वे तमाशा देखने की बजाय छुड़ाने के लिए आगे बढ़े। स्त्रियां थड़ों पर खड़ी होकर अपनी क़ीमती राय प्रकट करने लगीं। लेकिन जितना लोग आग्रह करते, उतना ही नूरू अपने नृशंसक इरादों पर कटिबद्ध होता जा रहा था। जब कोलाहल और जमघट अपनी तमाम पुरानी मर्यादाओं को पार कर चुका तो

नूरू की छाती ठंडी हुई। वही मोटे ढोल की सी, गंदे सेब की सी आंखों वाली, हतबी बेगम को अपने नरपिशाच नागराई के हाथों से छुड़ाने के लिए आई और आन की आन में सफल हो गई।

फिर वही पुराना घर जिसकी तिकोन छत पर प्याज़ की खेती थी। नूरू ने सन्तोष की सांस ली। रहती के साथ विवाहित जीवन को पुनरारम्भ करने में अब कोई रुकावट न थी, क्योंकि रसम पूरी संजीदगी के साथ निभा दी गई थी। रहती ने भी मुंह से नकली लहू पोंछा, और देखा कि नोटों का पुलिन्दा आज़ारबन्द में सुरक्षित है, फिर घर के काम में लग गई। नूरू साथवाले घर की छत पर बैठकर एक बुजुर्ग की चिलम की सांझी करने लगा। उसी घर के एक नवयुवक ने बाज़ार से उसके लिए मलमल की सफ़ेद पगड़ी ला दी, जिसे अपने उन्हीं मैले कपड़ों पर सजाकर और रहती की ओर एक लोलुप नज़र फेंककर, वह अपने नये जीवन की संसार को सूचना देने के लिए निकल पड़ा।

शाम हो चुकी थी। बाज़ार में भीड़ बढ़ गई थी। घरों में से चील के धूएं की खुशबू फैल रही थी। नूरू के मन में दो भाव इस समय प्रबलता से उद्दीप्त थे। एक तो यह कि उसे भूख लगी है और दूसरे यह कि जेल के फाटक में से जो संसार इतना सुखमय और बहुमूल्य नज़र आता था, वह अभी तक बहुत विशाल और फीका जान पड़ता है। जेल में वह कुछेक महत्वपूर्ण निश्चय करके निकला था, लेकिन अब उनके प्रतिफलित होने की आशा कठिन सी जान पड़ती थी। रहती के शरीर के लिए उसके रक्त में ज़बरदस्त भूख थी। शायद रात को वह छुपके-छुपके उसे फिर उसी तरह साफ़ होकर आने के लिए इशारा करे। लेकिन उसके जीवन का भविष्य हब्बू पर ही अवलम्बित था। वह कितनी उपेक्षा के साथ कन्नी काट गया ? शाम

हो गई, लेकिन अभी तक नहीं आया। क्या ही अच्छा हो कि उसे कुछ दिनों के लिए जेल ही में सोने दिया जाय। अभी कुछ घंटों की आज़ादी ही काफ़ी है।

कुछ इसी प्रकार सोचता वह लंगड़ाता हुआ चला जा रहा है। उसका ध्यान एक खाने पीने की दुकान के बाहर पड़े हुए सन्दूक की ओर गया। इसमें से किसी लड़की के गाने की आवाज़ आ रही थी—

चुल हमा रोशे रोशे

पोशे मति जाना नो।

नूरू ठहर गया। यह कौन गा रही थी? उसने देखा कि सड़क के किनारे बीस आदमी कान पर हाथ रखे बैठे हुए हैं, लेकिन किसी के मुंह पर तरस की रेखा तक नहीं कि गानेवाली को इस तरह बन्द किया गया है। और सन्दूक उसकी कोठरी के मुकाबले में कितनी छोटी थी? इतने में गाना बन्द हो गया। दुकानदार ने सन्दूक का ढक्कन खोला और उसमें से एक थाली सी निकाली। नूरू लपककर आगे बढ़ा और अन्दर झांककर पूछने लगा—'हतबी कहां है?' सभी लोग हंसने लगे। इतने में एक पुराने हमजोली ने उसकी बांह पर हाथ रखा और उसे दूकान के अन्दर ले गया।

रात के दस बज चुके थे जब नूरू लड़खड़ाता हुआ दूकान में से निकला। लड़की फिर वही गीत गा रही थी—

चुल हमा रोशे रोशे

पोशे मति जाना नो।

नूरू ने हंसते-हंसते ढकना उठाया और अन्दर झांककर फिर रख दिया। लेकिन अब कोई न हंसा। सड़क खाली थी।

अपने मित्र से विदा लेकर नूरू आहिस्ता-आहिस्ता अपने घर की ओर चला। लेकिन साथ ही साथ उसका मन घर की ओर से उचाट होने लगा। क्या रखा है वहां ? बीसियों के साथ प्रेम कर चुकी है। हब्बू के घर न आने का कारण भी वही है। न जाने अब भी किसी यार को बग़ल में ले बैठी हो। नशे में आकर किसी की प्रवृत्ति तामसिक हो जाती है और किसी की सात्विक।

नूरू वापस लौट पड़ा। पूरब दिशा में आकाश लाल बत्तियों के प्रकाश से अंगारे की तरह जगमगा रहा था। अभी अमीराकदल में जनसमूह का कोलाहल सुनाई दे रहा था। नूरू के दिमाग़ में शराब की मस्ती कुछ बढ़ रही थी। कदम चुस्त करके वह भी अमीराकदल की ओर चला।

बड़े बाज़ार में भीड़ सड़क के दोनों ओर रुकी हुई थी और महाराज की मोटरें गुज़र रही थीं। नूरू को भीड़ में ठहरना पसंद न आया। सरकता-सरकता, लोगों की गालियां और धक्के खाता हुआ वह पुल के पास पहुँच गया। भीड़ में से निकलकर वह पास ही के एक बाग़ में चिनार के नीचे जा बैठा। उसका हाथ उठकर उसकी आंखों के सामने आया। उसमें एक सोने की घड़ी अथवा ज़ंज़ीर थी और एक चमड़े का बटुआ। नूरू ने उसे खोलकर देखा। पन्द्रह रुपए थे।

इनकी तरफ़ देखता हुआ नूरू हंसने लग गया। हंसता गया और घड़ी को उलट पलटकर देखता रहा। उसकी उंगलियां अनभ्यस्त

होकर भी इतनी शिथिल नहीं हो चुकीं। यकायक उसने बटुआ भी और घड़ी भी घृणा के साथ दूर फेंक दी और उंगलियों को बन्द-खोल कर सराहने लगा।

लेकिन उसके मन की बेचैनी दूर न हुई। उठकर वह फिर बाज़ार में आ गया। मोटरें गुज़र चुकी थीं और भीड़ तितर बितर हो रही थी। नूरू को ऐसा लगा कि उसके मनोविनोद के लिए बनाई गई वस्तुएं बिखर रही हैं। और वास्तव में जो लोग एक व्यक्ति को मोटर में गुज़रते हुए देखने के लिए घंटों खड़े रहें और फिर चुपचाप घर चले जायें वे और थे ही क्या?

भीड़ एक स्थान पर गठ गई थी। एक मोटे पेटवाला व्यक्ति कभी पुल पर इधर और कभी उधर जाता था। जिधर वह जाता, भीड़ उसके पीछे जाती। नूरू को पता चला कि उसकी सोने की घड़ी चोरी हो गई है। उसके बाद एक और टोली एक थानेदार साहब की निगरानी में आ पहुँची। इनमें से एक का बटुआ गुम हो गया था और एक का कलम। एक दूसरे व्यक्ति का जेब कट गया था। नूरू पहले तो विस्मित हुआ फिर उसकी बांछें खिल गईं। यह अकेले जादूगर का काम नहीं है। कोई और भी खेल रहा है। पुल के नीचे-नीचे दरिया अपनी मस्त चाल से बह रहा था। डूगों में हतबियां किसी आगामी शादी के गीत गा रही थीं। तख़्तए सुलेमान पर चांद अपनी पूरी ज्योति के साथ चमक रहा था। पुल के जंगले के साथ टेक लगाकर नूरू ने गुनगुनाना शुरू किया:

'चुल हमा रोशे रोशे
पोशे मति जाना नो।'

भीड़ आहिस्ता-आहिस्ता खत्म होने को आई। लंगड़ू भी उसकी एक शाखा के साथ-साथ पीछे चला।

वह नहीं जानता था कि वह किस दिशा में जा रहा है, या क्यों। कभी कभी राहगीरों को ताने दे देता, उनके वस्त्रों पर कटाक्ष करता, लेकिन वह गम्भीर सा मुंह बनाकर आगे चले जाते, जैसे घर नहीं दफ्तर जा रहे हों।

अब उसे ख़ाहिश हो रही थी कि घर लौट जाऊं, लेकिन एक-एक कदम के साथ उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह बीस-बीस कोस आगे बढ़ रहा है। हबीब ख़ान घर पर नहीं होगा। रहती कितनों के साथ लेट चुकी है। नापाक औरत! अब भी किसी की बग़ल में बैठी होगी।

इस उधेड़बुन का आखिरी फ़ैसला करते हुए नूरू ने तय किया कि वह आज ही रात दूसरी शादी करेगा। रहती और हबीब को भविष्य में शकल तक न दिखायेगा। स्त्रियां डूँगों में बैठकर उसके गीत गाएंगी और वह सन्दूक से भी संगीत करवायेगा।

लेकिन इसके लिए पैसों की ज़रूरत होगी। हूँ ! पैसों के लिए ही तो वह भीड़ के पीछे जा रहा था।

हजूरी बाग़ के चिनारों के समीप पहुँचकर उसने राह बदल ली। बाग़ के बाईं ओर तीन-चार सफ़ेद कोठियां चांद की धूप में सो रही थीं। इन्हीं में से एक पर उसकी नज़र जम गई।

कोठी की बग़ल में एक पेड़ था। नूरू उसके साथ सटकर खड़ा

हो गया, जैसे किसी प्रेयसी के गाढ़ आलिंगन में हो। आहिस्ता से उसने अपनी सफ़ेद पगड़ी को ज़मीन पर रगड़कर मैला किया, और फिर उसे रस्सी की तरह गठकर बांह के नीचे दाब लिया।

कोठी के आगे सात फुट ऊंची दीवार थी और उसकी चोटी पर कांच के टुकड़े जड़े हुए थे। सड़क की टाह लेकर नूरू बड़े आराम के साथ दीवार के पास पहुँचा और छांहों में लुक गया। थाड़ी देर भिखारियों की तरह बैठकर दायें बायें देखता रहा, फिर उठकर उसने पगड़ी को ढीला किया और काँच के ऊपर ज़बरदस्त झटके के साथ पटका। वह फ़ौरन बैठ गई। स्थान स्थान पर उसने उसमें गाँठें बांधीं। इस प्रकार पगड़ी की दोहराई में जूने समेत कदम रखकर वह सहज ही दीवार पर पहुँच गया। वहाँ से बिजली की तरह पगड़ी-सीढ़ी उठाकर अन्दर की ओर फेंकी और फिसलकर बाग़ीचे में आ रहा।

फिर पगड़ी खोलकर उसने इस ढंग से फैला दी, जैसे कोई कपड़ा सूखने के लिए डाला जा रहा हो। उसके एक छोर के नीचे अपना जूता छिपा दिया ताकि ढूँढ़ना न पड़े।

मकान के आगे एक छोटा सा बरामदा था। जिसके शीशे के सभी दरवाज़े बन्द थे। शीशों को काटकर दरवाज़ा खोलना असम्भव था, क्योंकि नूरू के पास कोई औज़ार न थे, इस लिये वह मकान की पिछली तरफ़ गया। ऊपर की छत के एक कमरे में बत्ती जल रही थी, और इसमें नौकर बरतन मांज रहे थे। मकान के एक तरफ़ लकड़ी की तंग सीढ़ी थी जिसका दरवाज़ा अभी बन्द नहीं किया गया था। यदि फ़ौरन ही उसने इसका फ़ायदा न उठाया तो यह भी बन्द कर दिया जायगा। नूरू दबे पांव ऊपर चढ़ गया और रसोई घर की खिड़की में से अन्दर झांकने लगा। एक नौकर बरतन धो रहा था

और दूसरा प्लेटों को पोंछ रहा था। कम-अज़-कम आधे मिनट के लिए उनके मुंह फेरने की सम्भावना नहीं। यह ठानकर नूरू ऐन उनके सामने होकर गुज़र गया और एक अंधेरे कमरे में प्रविष्ट हुआ। लेकिन तभी उसे एक नौकर के गाने की आवाज़ अपनी ओर आती सुनाई दी। नूरू एक दम सटकर दीवार के साथ खड़ा हो गया। नौकर अन्दर आया। नूरू का कलेजा धड़कने लगा, लेकिन उसने सोच लिया कि यदि नौकर बिजली का बटन दबा दे तो उसे क्या करना चाहिये। मगर नौकर ने बटन नहीं दबाया। कोई चीज़ उठाकर वह फिर बाहर चला गया। नूरू फ़ौरन दूसरे दरवाज़े से होकर मकान के भीतर जा घुसा। यहां एक गली सी थी, जिसके साथ साथ सीढ़ियां ऊपर नीचे जाती थीं। फ़र्श लकड़ी का था और चिरचिर करता था। लेकिन नूरू हल्के कदमों से ऊपरवाली सीढ़ियों पर जा चढ़ा। फिर अपने हाथों की मदद से जंगले पर ज़ोर डालकर तीन छलांगों में तीसरी छत पर जा पहुंचा। एक मंज़िल बाक़ी थी, वह भी चढ़ गया। उसने जांच लिया कि इस मंज़िल पर कोई नहीं रहता। आश्वस्त होकर वह सीढ़ियों पर बैठकर दम लेने लगा।

सीढ़ियों के दायें बायें के दरवाज़ों से चन्द्रमा का प्रकाश छलककर अन्दर आ रहा था। इसकी सहायता से नूरू ने अपरिचित घर के दायें बायें नज़र फेरी। सब सुनसान था। नूरू को अपना वहां होना बहुत ही विचित्र सा लगा।

उसका मन चुटकियां लेने लगा। मैं क्यों यहां आया हूं ? इसलिए कि मैं रह नहीं सका। मुझे दूसरे के घरों के वह हिस्से देखने की लत पड़ गई है, जिन्हें वह स्वयं नहीं देखते। धन ख़र्च करते हैं, मकान बनवाते हैं, फिर उन्हें भूल जाते हैं। सुबह उठे, काम पर चले गये, रात को लौटे चिटख़नियां चढ़ाकर सो गये। कभी इस तरह सीढ़ियों

पर बैठकर उन्होंने चन्द्रमा नहीं देखा। वास्तव में मकानों का स्वामी तो मैं हूँ। मैं पास आते ही उनकी दीवारों से मित्रता पैदा कर लेता हूं। मैं उनकी छातियाँ चीरकर चला जाता हूं और वह मुझे याद करती रहती हैं।

एक सफ़ेद बिल्ली किसी कोने से निकली और उसे देखकर भाग गई। नूरू भी सटक गया। फिर हँसने लगा। ख़ुदावन्द ने उसे ग़रूर की सज़ा दी।

नौकर अब सो गये होंगे, यह अनुमान करके नूरू उठा और शनैः शनैः निचली छत पर उतर आया। यहाँ उसने एक किवाड़ को धकेला और दाखिल हुआ। चन्द्रमा की रोशनी कमरे के अन्दर आ रही थी। कमरा खाली था। दीवार के साथ एक मेज़ पर कुछ बोतलें पड़ी थीं और बाक़ी कमरा भी एक बड़े से मेज़ और कुर्सियों से पूर्ण था। नूरे ने एक बोतल खोली और नाक से लगाई। फिर गटागट पांच दस घूंट पी गया। इसके बाद वह कुर्सियों से बचता हुआ साथवाले कमरे में पहुँचा। यह भी खाली था। क्या सारा मकान ही खाली था?

इस कमरे के एक तरफ़ मेज़ पर कुछ वस्तुएँ पड़ी थीं। नज़दीक आने पर मालूम हुआ कि यह तेल की बोतलें व कंघी बुरुश इत्यादि हैं। नूरू ने दराज़ खोलकर देखे। यहां उसे सोने की चार चूड़ियां और दो अंगूठियां मिलीं। नूरू ने इसे बहुत ही अच्छा सगुन समझा। उसकी भावी पत्नी के लिये ज़ेवरों को इन्तज़ाम भी सहज ही में हो गया। उन्हें जेब में डालकर उसने दरवाज़ों को फिर टटोला, लेकिन और कुछ न मिला। वापस लौटते वक्त उसने देखा कि उसकी टांगें कुछ न कुछ लड़खड़ा रही हैं। यह अनुभव करके कि शराब

अब भी ठीक वही वस्तु है जो आठ बरस पहले थी, उसे प्रसन्नता हुई, इसलिये उसने पहले कमरे में वापस आकर बाकी बोतल भी समाप्त की। अब उसे ख़याल आया कि दुलहिन के लिए जेवर तो ले लिये, लेकिन अगर तेल, कंघी और शीशा भी ले चलूं तो क्या हर्ज है। ज़माना बदल रहा है। मुझे भी अपने विचार बदलने चाहियें। मैं अपनी दुलहिन को वेश्याओं से भी सुन्दर बनाकर रखूंगा और वह किसी दूसरे मर्द की ओर देखेगी भी नहीं। केवल मुझे प्यार करेगी।

अब निधड़क होकर उसने बिजली का बटन दबा दिया। रोशनी ने उसकी आंखों को चुंधिया दिया। उसने देखा कि दीवारों से सटी हुई दो तीन आल्मारियां भी हैं। वह रुकता रुकता उनके पास पहुँचा और किवाड़ खोल दिये। देखा कि आल्मारियां सिल्क और ऊन के मुलायम कपड़ों से लदी पड़ी हैं, और उनमें अत्याकर्षक गन्ध आ रही है। उसने कपड़े फ़र्श पर फेंकने शुरू कर दिये। फिर कंघी शीशा लेने ड्रेसिंग टेबल पर पहुँचा। शीशियों के बीच में एक चांदी की छोटी सी, अति सुन्दर, काश्मीरी सुरमादानी पर उसकी आंख पड़ी। उसका दिल बाग़ बाग़ हो गया। अगर दुलहिन सजी धजी होनी चाहिये तो दूल्हा का शृंगार भी तो लाज़िमी है। कपड़ों के ढेर के दरमियान आईना अपने सामने रखकर वह बैठ गया और लगा आंखों में सलाई फेरने।

दूर से पहरेदार की आवाज़ उसके कानों पर पड़ी—'ख़बरदार! ख़बरदार हो....ए!' यह नूरू को बड़ी सुरीली लगी, विशेष कर 'हो....ए' वाला हिस्सा, जैसे पहरेदार ने केवल उसी के मनोरंजन के लिए निकाली हो, बड़े आराम से उसने अपने नेत्रों में सुरमा डाला, और कोशिश की कि आंखों में ही पड़े।

पहरेदार की फिर आवाज़ आई।

'खबरदार हो....ए !'

नूरू को फिर बहुत आनन्द आया। बच्चों की तरह नकल उतारकर उसने भी ऊँचे स्वर में पुकारा—

'खबरदार ! खबरदार हो....ए !'

मुहल्ले का पहरेदार इस प्रतिध्वनि को सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। कलाविदों को कलाविदों का अभिनन्दन पाकर प्रोत्साहन मिलता है। उसने लट्ठ किसी दीवार के साथ पटककर एक नये ढंग से ललकारा—

'हट हट अहहहह खबरदार हो....ए !'

इधर से भी प्रतिध्वनि हुई—

'हट हट अहहहह खबरदार हो....ए !'

लेकिन साथ ही एक दारुण चीत्कार भी उठा। वज़ीर-माल साहब के बंगले से घबराई हुई आवाज़ें आनी शुरू हो गईं। पहरेदार भागा और फूल में छुपे हुए कांटे की तलाश में, फाटक कूदकर मकान के अन्दर घुसा। घुसते ही उसने एक फ़ायर बन्दूक का आकाश में किया। निचली छत पर वज़ीर साहब और उनका कुटुम्ब बरामदे में खड़ा काँप रहा था। ऊपर से लगातार आवाज़ें आ रही थीं—

'हट हट अहहहहह खबरदार हो....ए !'

'हट हट अहहहहह खबरदार हो....ए !'

———

शाहज़ादों का ड्रिंक

ओवरकोट की बांह को कन्धे पर फेंकते हुए जगदीश दरवाज़े की ओर बढ़ा। दरवाज़े के नज़दीक पहुँचकर उसने फिर कहा—'देखो, वक्त पर पहुँच जाना। गाड़ियां अक्सर समय पर ही आती जाती हैं। प्लेटफ़ार्म नम्बर दो।'

केवल ने हंसकर कुछ धीमे से कहा—'अच्छा।' उसको अपने मित्र का ऊँचा बोलना पसन्द नहीं था। आजकल यह सब इतना ऊँचा क्यों बोलते हैं? ऊँचा और खोखला।

'चीरियो' कहकर जगदीश बाहर चला गया। उसके पैरों की चाप होस्टल के बरामदे में देर तक सुनाई देती रही।

केवल ने साथ के कमरे में जाकर बिस्तर में से एक गर्म चादर

खींच ली और वापस आकर टहलने लगा। इतनी सबेरे उठा दिया जाना कम्बख़्ती नहीं तो और क्या है! ख़ासकर जब कोई रात को इतनी देर से सोया हो। अभी अखबार बेचने वालों का गिरोह होस्टल पर धावा बोल देगा और थके हुये दिमाग़ पर घोर अत्याचार करेगा। उसे जल्दी सोने और जल्दी जागने वालों से दिली नफ़रत थी। लेकिन अब लेटने से कुछ लाभ नहीं था, क्योंकि दिन चढ़ा ही चाहता था। कालेज के रोमन स्टाइल के नोकीले शिखर की चोटी सूर्य की प्रथम किरणों की प्रतीक्षा कर रही थी। केवल ने कमरे की खिड़की बन्द कर दी, ताकि रात वहां कुछ देर और टिकी रहे। और तब वह आराम कुर्सी पर बैठकर ऊंघने लगा।

प्रभात के हल्के प्रकाश से कमरे में क्रमशः उजियाला होने लगा। कमरा ढंग से सजा था। बेंत की चार-पांच कुर्सियां, बीच में लाल कालीन। केवल की कुर्सी के ठीक ऊपर बौटीसेली का 'फ़रिश्तों के सिर' नामक चित्र लटक रहा था। साथ वाले कमरे में केवल का साथी अभी तक सोया हुआ था। इन दोनों ने मिलकर यह स्पेशल सेट ले रक्खा था।

नाश्ते के समय केवल के दोस्त ने पूछा—'इतनी सुबह कौन तुम्हारा सिर खाने आया था।'

'जगदीश, और कौन। अपने निमन्त्रण की याद दिलाने। आज ही बारात दिल्ली के लिए रवाना होगी।'

'अपनी सूरत को दाद दो मियां।'

'इसका मेरी सूरत से क्या ताल्लुक है?' केवल ने खीजकर कहा।

'दुनियां चलती ही हुस्न के बल पर है। जगदीश मेरा भी उतना ही दोस्त है, फिर भी उसने मुझे नहीं बुलाया। और देखो—यहां भी मेरे रात वाले दृष्टिकोण का समर्थन होता है। संसार में यदि कुछ है तो बस हुस्न ही। हुस्न के बिना दुनियां रीती है। यह भीतरी सत्य और आन्तरिक वास्तविकता की फ़िलासिफ़ी सब बकवास है। सत्य या तो सादा होता है या कड़ुवा। सौन्दर्य मीठा होता है, इसलिये हम सब उसकी ओर दौड़ते हैं।'

'क्यों फ़िज़ूल बहक रहे हो ?'

'....तुम्हें याद है वह दूर से आती हुई चांदनी में चमकती हुई नाव ? कितना लुभाती थी। मानों संसार भर का रोमान्स उसी में भरा हो, निकट आने पर उसका क्या हुलिया निकला ? अब....'

केवल ने हंसते हुए तिपाई पर हाथ मारा।

'शाबाश, माई डियर सोक्रेटीज़ ! लेकिन यह न होगा। वाद-विवाद के लिये अभी बहुत सबेरा है। तुम इतने दार्शनिक कब से बन गये ? पता नहीं, उन बेचारों का क्या हाल हुआ होगा, जिनका तुम तीन घण्टे तक सिर खाते रहे थे। मियां, हम कल पिकनिक पर गये थे, मिशन पर नहीं। बात को कहीं छोड़ा भी करो। आज मुझे दिल्ली जाना है। इस समस्या का तो तुम्हें ख़्याल नहीं।'

'दिल्ली जाना भी कोई समस्या है ? वह शहर जो एकदम सबसे बूढ़ा और सबसे जवान। देखो, मैंने अपने दूध के दांत दिल्ली की धरती में गाड़े थे, इस ख़्याल से कि सिपाही ऊगेंगे। काश्मीरी दरवाज़े के साथ वाले बाग़ में। ज़रा देखते आना अभी उगे या नहीं।'

'दिल्लगी छोड़ो मियाँ ! इम्तहान में सिर्फ़ बीस दिन रह गये हैं। मैं ज़रूर इंकार कर देता, पर जगदीश इतना ऊँचा चिल्लाता है कि उसने मुझे बोलने तक नहीं दिया।'

'सच बात तो यह है कि तुम बड़े मुलायम हो और सारी उम्र तुम मुलायम ही रहोगे, और मैं तुम्हारा ग़ुलाम रहूँगा। अब तुम्हें छुट्टी लेने की समस्या होगी ? अच्छा, यह भी मैं ठीक कर लूँगा।'

'थैंक यू।'—केवल ने कहा।

२

पश्चिम ने हमारे विवाहों पर यों तो कोई प्रभाव नहीं डाला। सम्बन्ध मां-बाप ही ठीक करते हैं। लड़के-लड़की का बीच में बोलना गुनाह समझा जाता है। रस्में भी वही अदा होती हैं, जो कभी बाबा आदम के ज़माने में शुरू हुई होंगी। विवाह के दिन दूल्हे और ईद के बकरे में कुछ विशेष अन्तर नहीं रहता। इन पुरानी प्रथाओं पर दूल्हा-दुलहिन को चाहे जितनी खीज आये, उन्हें मन मारकर रह जाना पड़ता है।

लेकिन सतह के ऊपर पश्चिम का सिक्का खूब जम चुका है। घरों को बिजली से सजाकर नुमाइश की जाती है। बारात का स्वागत करने के लिये मंडप बनाये जाते हैं, जिनमें सोफ़ों और पॉम के गमलों की कमी नहीं होती। बराती सूट-बूट पहन कर मोटरों में आते हैं, और उन्हें पान सिगरेट मुस्तैदी के साथ पहुँचाये जाते हैं। खाना मेज़ों पर दिया जाता है, हो सके तो चीनी की तश्तरियों में। वे बुज़ुर्ग जो अब भी चाय नहीं पीते, पुरानी वज़हदारी के शौकीन हैं, पिछली कतार में

जगह पाते हैं, जहां वे बैठकर पुराने और नये ज़माने की गुत्थियां सुलझाते रहते हैं। मौसियों और चाचियों के झुंड घर के भीतर पकवान बांटते और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। विवाह समारोह के इस चित्र का अगला भाग रंग बिरंगी साड़ियाँ पहनने वाली ललनाओं से भरा रहता है, जो चतुर दूल्हे के लिये गुलाब के हार लिये इन्तज़ार में होती हैं।

आज स्टेशन पर स्त्रियां भी काफ़ी संख्या में आई थीं। दूल्हा के पिता लाहौर के प्रमुख व्यक्तियों में से थे, इसलिये बरातियों की कमी न थी। सारा प्लेटफ़ार्म जगमगा रहा था। हर तरफ़ हँसी मज़ाक की बहार थी।

गाड़ी चलने से दस-पन्द्रह मिनट पहले केवल भी वहाँ जा पहुँचा। भीड़ भाड़ को देखकर पहले तो वह झिझका, लेकिन जल्दी ही उसका मन बारीक-सी ख़ुशी से भर गया। आज उसकी पोशाक में कोई त्रुटि न थी। बाल उसने बड़ी कोशिश से संवारे थे। रेशम की मुलायम कमीज़ पहनी थी और उसपर गहरे नीले रंग का इस्त्री किया हुआ सूट। पैरों में चमकीले काले चमड़े के जूते। अब सिर्फ़ अपने आपको अपनी सुन्दरता में बंद कर लेना ही बाकी था। यही उसने किया। बग़ैर किसी को मिले वह एक कोने में जाकर खड़ा हो गया, मगर ऐसे कोने में नहीं, जहां प्लेटफ़ार्म के किसी तेज़ बल्ब की रोशनी ऐन उसके मुंह पर न पड़े। जगदीश केवल की इन्तज़ार में था और उसे देखते ही उसके पास आ पहुँचा। आज वह इतना उल्लसित था कि दूर ही से उसने केवल को अपने मित्रों से परिचित कराना शुरू कर दिया—"यह प्रकाशचन्द हैं, दो साल हुये हमारे ही कालेज से एम. ए. किया था, अब ई० ए० सी० हैं। रौनकी आदमी हैं। इन्हें हम पीपी कहते हैं। जिसके साथ वह बातें कर रहा है, किशन खन्ना है, ये भी ओल्ड

जी० सी० हैं, अब इंश्योरेंस का काम करते हैं। यह दोनों हमारे डिब्बे ही में सफ़र करेंगे। शानदार आदमी हैं। और वह....

केवल जगदीश की बात तो सुन रहा था, पर उसका ध्यान उधर न था। प्लेटफ़ार्म की चहल पहल उसे आकर्षित कर रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उन बिजलियों के नीचे एक नई दुनियां आ बसी हो, जिसकी छत पर न सितारे हैं और न दिल में जोश पैदा करने वाले क्षितिज। इस छोटी सी दुनियां में केवल उल्लास और सौन्दर्य था। जनसमूह में लाल और नीली साड़ियां पहने हुये किशोरियों का चंचल चक्रव्यूह खिले हुये फूल की तरह शोभायमान हो रहा था। केवल निस्तब्ध होकर देखता रहा। उसे अपने रूम-मेट की बहस फिर याद आई। सचमुच सौन्दर्य बहुत बड़ी चीज़ है। उसे गार्ड की सीटियों तक का ध्यान न रहा। जब गाड़ी चली और प्लेटफ़ार्म फिसलना शुरू हुआ, फूल की पत्तियां भी बिखरती नज़र आने लगीं, तब उसे ध्यान आया कि सौन्दर्य का यह संसार तो क्षण भर के लिए था। जगदीश ने उसे ज़ोर से पुकारा और वह दौड़कर गाड़ी में सवार हो गया। गाड़ी उफ़ उफ़ करती हुई कुछ ही क्षणों में रात की असीमता में विलीन हो गई।

केवल अब भी डिब्बे के दरवाज़े पर खड़ा था। जगदीश ने उसके पास आकर कहा—

'अब वहां कुछ नहीं है अन्दर आ जाओ, वरना सर्दी खा जावोगे।'

केवल ने जैसे अपनी मूर्खता पर हंसते हुये किवाड़ बन्द कर दिया और जगदीश के पास जा बैठा।

'तुम्हें औरतों पर घूरने का शौक कब से सवार हुआ है ? मेरा ख़्याल था, तुम अभी बच्चे हो।'

'इसमें बुराई क्या है ? किसी ख़ास स्त्री को तो मैं ताक नहीं रहा था। यह सारा का सारा दृश्य ही इतना मोहक था। मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि हम वहां से कभी हिलेंगे ही नहीं।'

'अगर मैं तुम्हें आवाज़ न देता, तो तुम तो कम से कम न हिलते।' फिर 'हांजी', कहकर उसने ताली बजाई—'यह मेरे परम मित्र मिस्टर केवल, फोर्थईयर, गवर्नमेंट कालेज, यह मेरे भाई मिस्टर रतन-चन्द, आप शादी कर रहे हैं ?'

'हौ डू यू डू ?'—'हौ डू यू डू !'

'मिस्टर प्रकाशचन्द, केवल, किशनलाल।'

'हौ डू यू डू ?' हौ डू यू डू ! हौ डू यू डू !'

यह अच्छा हुआ कि सब यार दोस्त ही थे। सबने अपने अपने बिस्तर निचली सीटों पर खोल दिये और सूट बूट उतारकर रात की पोशाक में हो गये। केवल ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अपने रूममेट का ड्रेसिंग गौन ले आया था, वरना उसकी फ़ज़ीहत अवश्य होती।

गाड़ी खटाखट तेज़ी से भागी जा रही थी। बाहर कृष्णपक्ष की दूज का चांद वृक्षों की कतारों के परदे में से उठता हुआ दीख रहा था।

ज़्यादा देर चुप रहना क्रिशन की आदत के खिलाफ़ था। उसका सिद्धान्त था कि चुप रहना मानवी स्वभाव के विरुद्ध है—खासकर इंश्योरेंस एजेन्ट नामक जीव के लिये। चांदी का सिगरेट केस निकाल कर उसने सबको पेश किया। केवल पहले तो हिचकिचाया—उसे आदत न थी,—फिर ले लिया। क्रिशन ने बारी बारी सबके सिगरेट सुलगाये, फिर उन्हें पास बुलाकर अपने ट्रंक के ऊपर बैठ गया और बोला 'तुम्हें कुछ दिखायें।'

सबने यही सोचा, दूल्हा के लिये कोई उपहार लाया होगा। ऊपर की तहें कपड़ों की थीं। उन्हें उठाते हुये क्रिशन ने कहा—'भई बूझो, जादू के इस पिटारे में क्या है?'

'बिज्जू!'

'बिज्जू तो पिटारे के बाहर है।'—पीपी ने कहा। इस पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े। सिगरेट के धुंये से आंखों को बचाने के लिये क्रिशनलाल ओंठ बाहर किये और मुंह के मसल (muscle) सिकोड़े हुये था। इससे उसकी शक्ल में थोड़ा सा बिज्जूपन आ गया था। यदि क्रिशनलाल आइ० ए० के स्थान पर वहां सम्पूर्ण बिज्जू बैठा होता, तो भी शायद उन्हें इतनी हँसी न आती। इस हँसी में क्रिशन ने तौलिये में लिपटी हुई एक शेम्पेन की बोतल निकाली और गाल के साथ लगाकर खड़ा होगया।

Angles and Ministers of grace defend us रतनचन्द सेहरा सिर ने पर रखकर नाचना शुरू कर दिया। जगदीश और पीपी भी 'जीन्दा रवें जीन्दा रवें!'* का शोर करते हुए उसके साथ शामिल हो गये।

---

* जीते रहो! जीते रहो!

केवल को ऐसा जान पड़ा, जैसे वह एकाएक बिल्कुल किसी अपरिचित स्थान पर आ गया हो। छोटी उमर में जब कभी अपने गांव जाता था, तब उसका यही हाल होता था। वहां का पानी उसे फीका लगता और हरदम यही जी चाहता कि वापस लौट जाऊँ, लेकिन उसी गांव से एक मास के अन्दर इतना स्नेह हो जाता कि बाद में लौटने को जी नहीं करता।

'खुदा के वास्ते शोर न करो, पिछले डिब्बों में बुज़ुर्ग लोग बैठे हैं।' क्रिशनलाल ने चेतावनी दी।

'अरे जाने भी दो, भला कभी उन्होंने भी शराब पी है! इधर लाओ।'

'पहले देख लो कि गाड़ी ठहरने को तो नहीं।'

'ठहरेगी तो बत्ती बुझा देंगे।'

'यह जाती है फिर,'—कहते हुए उसने फक से बोतल का डाट खोल डाला और छोटे-छोटे गिलास भर दिये।

'यह लो पहला जाम, दुलहिन के सुहाग का।'

केवल ने इंकार किया—'मुझे क्षमा कीजियेगा, मैं नहीं पिया करता—मैं सिगरेटों में जो आपके साथ शरीक हूँ—कोई ज़रूरी है?'

लेकिन कौन मानता था। 'तुम्हें मार तो नहीं डालेगी मियां! क्या तुम बच्चे हो? शेम्पेन तो शाहज़ादों का ड्रिंक है, इससे नशा बिल्कुल

नहीं होता।' जगदीश ने भी दो लफ़्ज़ कह दिये—'अपने दोस्त की शादी पर तो हज़ार खुशियां मनानी चाहिएँ, कभी कोई जामे सेहत से भी इंकार करता है ?'

केवल ने थोड़ी सी ले ली। बहस करना उसके स्वभाव में न था। आखिर हो क्या गया। एक घूँट भर लेने से इन्सान शराबी थोड़े बन जाता है। हमें इन सामाजिक बंदिशों को तोड़ना ही पड़ेगा, फिर भी मन मुंह लगाने से घबराता था। दिल कड़ा करके वह उसे पी तो गया, मगर उसी वक्त उसे यह सोच कर सख्त हैरानी हुई कि मज़बूत से मज़बूत दीवारें भी कितनी आसानी से टूट सकती हैं।

जब स्टेशन आया, तो सब बत्तियां बुझा दी गयीं। सब अपने-अपने बिस्तरों पर चले गये। ईश्वर की कृपा से वहां गाड़ी कुछ ही मिनट ठहरती थी। टोली का अधिक समय ज़ाया न हुआ। अब असल मज़ाक शुरू हुआ। कुछ देर तो दूल्हा की खबर ली गयी। फिर ब्रिज शुरू हुई। शेम्पेन के सुरूर में एक दूसरे को चिढ़ करने का जो मज़ा उन्हें आ रहा था, उसका अन्दाज़ा उनके चमकते हुए चेहरों से ही हो सकता था।

पहला गिलास पीते वक्त केवल ने कोशिश की थी कि दो-एक घूंट भरकर वह इस खट्टी बला को बाहर फेंक दे, किन्तु वह ऐसा न कर सका। इसके बजाय यह अच्छा रहेगा कि वह दूसरा गिलास हरगिज़ न ले, लेकिन जब वक्त आया, तब उसकी "नहीं नहीं" की तरफ़ किसी ने ध्यान न दिया। अब तीसरा दौर चल रहा था। पता नहीं कम्बख्त किशन कहां से इतनी बोतलें उठा लाया था।

इस वक्त तक बाहर सभी ओर चाँदनी छिटक गई थी। और वही

असीम दुनियां जो दिन को धूल धूसरित और दरिद्र सी नज़र आती थी, चाँद के नीलिम प्रकाश में शान्त और आनन्दमयी प्रतीत हो रही थी। गाड़ी धुँआधार, चीखती-चिंघाड़ती जीवन के क्षणों को निगलती जा रही थी।

लगभग दो घंटे के बाद।

स्टेशन पर बिजली का बटन गिराना और उठाना जगदीश की ड्यूटी थी। अब वह इसे इतनी चुस्ती से नहीं कर सकता था। इस बार जब वह रोशनी करने उठा, तो अंधेरे में किसी की टांगों से उलझकर फ़र्श पर जा गिरा। किशन भाग कर उसकी मदद को गया। केवल ने रोशनी की। तब उन्होंने देखा कि अंधकार में ही दो व्यक्ति छिपकर इस डिब्बे में घुस आये हैं। एक तो अधेड़ उम्र का पुरुष था और दूसरी बुर्का पहने एक स्त्री। वस्त्रों से दोनों ही मामूली हैसियत के जान पड़ते थे।

'कौन हो तुम ? क्या करने आये हो यहाँ ?' किशन ने डांटकर पूछा।

'माफ़ कीजियेगा ! हमें पता न था कि यह डिब्बा आप लोगों का है। अगले स्टेशन पर उतर जायेंगे।' उसके लहज़े में थगावट थी—'अब गाड़ी छूट रही है और मेरे साथ ज़नाना सवारी है।'

केवल इस व्यक्ति को ग़ौर से देख रहा था। उसके गोरे और सुघड़ चेहरे पर चेचक के दाग़ थे। होठों पर छुटी हुई काली काली मूंछें। आँखें काली और अशान्त।

जगदीश गुस्से में बड़बड़ा रहा था—'निकाल दो इसको, यह चोर है।'

केवल को अनुभव हुआ कि बहुत बातें कर सकने की ताकत उसमें भी नहीं रही, किन्तु उसने देखा कि बुर्के की जाली में से दो सुन्दर आँखें उसे देख रही हैं। उसने क्रिशन से कहा—'अब गाड़ी चल चुकी है, इन्हें बैठने दो, मामूली बात है।'

क्रिशन अभी तक बिलकुल होश में था। केवल की बचकानी आतुरता पर वह हंस पड़ा। आगन्तुक और स्त्री एक कोने में सिमटकर बैठ गये। ताश और बोतल के दौर में उनकी उपस्थिति का किसी को ख़्याल तक न रहा—सिवा केवल के। इस रबर में वह पांचवा था। अलग बैठकर वह ख़्याल के दौरे डालने लगा।

रात कितनी सुन्दर थी। तारे जुगनुओं की भांति टिमटिमा रहे थे। टेलीग्राफ के काले-काले तार नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तरंगें मारते थे। कभी-कभी बड़े वृक्ष आकर उन्हें मानों पोंछ डालते। कभी कोई नहर चमकीले रिबन की तरह क्षण भर के लिये झलक दिखाकर भाग जाती और गाड़ी की निरन्तर झंकार में एक क्षण के लिये परिवर्त्तन आ जाता।

यकायक स्त्री ने मुंह पर से पर्दा हटा दिया। केवल का ध्यान उसकी तरफ खिंच गया। वह सचमुच सुन्दर थी—रंग सांवला, आंखें बड़ी-बड़ी और चंचल। जब से वह आई थी केवल को अनुभव हो रहा था कि वह विशेषकर उसी के प्रति दिलचस्पी ले रही है, पर शायद यह उसकी भूल थी।

२

उसे फ़िकर हुई। कहीं मैं नशे में तो नहीं हूँ। कहीं मुझे किसी ने पहचान तो नहीं लिया। अगर लालाजी को पता लग गया तो फिर? मन ने दूसरी चुटकी ली। कौन कहता है मैं नशे में हूँ? वह चांद है, वह ध्रुवतारा है, वह जगदीश है। मैं नशे में कैसे हो सकता हूँ? हो

क्या गया, यदि मैंने आज थोड़ी सी शेम्पेन पी ही ली तो ! पश्चिम में सब छात्र शराब पीते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। एक हम हैं, हर समय यही सोचते रहते हैं कि यह करेंगे, तो वह क्या कहेगा, वह करेंगे, तो यह सब क्या कहेंगे ? उंह ! कितनी कमाल की चांदनी है ! क्या यह चांदनी रात सिर्फ़ सोने के लिये बनी है ? वह देखो, मेरी तरफ़ देख रही है। आवारा कहीं की। ऊपर के बर्थ के साये के और भी अन्दर छिपकर केवल लेट गया। और उन दोनों की तरफ़ देखने लगा।

पुरुष सामने की दीवार पर टकटकी बांधे था, जैसे वह किसी विस्तीर्ण मरुभूमि पर नज़र फेंक रहा हो। वह किसी गहरे सोच में होगा। केवल के जी में आया कि उसे भी लापरवाही का एक गिलास भर पिला दे।

एकाएक उसे जान पड़ा कि वह चेहरा उसने पहले भी कहीं देखा है। चेहरे से ज़्यादा आगन्तुक की मूंछें और पगड़ी उसे परिचित जान पड़ीं। निश्चय ही उसने यह चेहरा पहले भी कहीं देखा है, पर कब और कहाँ ?

'केवल यह लो।' किशन ने पुकारा। केवल अपना गिलास थामकर उठा। उसे यह अनुभव करके आश्चर्य हुआ कि उसकी टांगें उसका कहना मानने से इंकार करने लगी हैं। इस विचित्र अनुभूति पर उसे बेअख्तियार हंसी आई। केवल को हंसता देखकर उसके साथियों ने भी हंसना शुरू कर दिया। कुछ देर के लिये वे सब खूब खिल-खिलाकर हंसते रहे। केवल हंसता भी गया, पर साथ ही उसे हैरानी थी कि और सब क्यों इतना हंस रहे हैं। नाराज़ सा होकर वह वापस लौटा, तो वह युवती भी उसपर मुस्करा रही थी। केवल को इस क्षण वह बहुत अच्छी लगी।

पुरुष के चेहरे ने फिर से उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसने अवश्य ही यह चेहरा कहीं देखा है! उसे स्मृति को कुरेदने की आवश्यकता प्रतीत हुई। स्मृति भी एक सागर है, जिसकी लहरों पर हाथ मारता हुआ इंसान कहां से कहां जा पहुंचता है। ओह, यह तो भाई कांशीराम था। अवश्य ही। अब उसने नई दिलचस्पी से आगन्तुक की ओर देखा। निश्चय ही यह तो वही है। उसके जी में आया बग़ैर सोच-विचार किये उन्हें बुला ले। फिर रुक गया। सोचा, शायद वह कांशीराम न हो। शायद मैं नशे में हूं। भला यह कांशीराम कैसे हो सकता है? इसके साथ तो मुसलमान औरत है।

काश कि वह कांशीराम होता। केवल के दिल में भावों की लहर सी उठ खड़ी हुई और उसका गला भर आया। उसे अपना बचपन याद हो आया। कांशीराम उन दिनों स्कूल में अध्यापक था, और वह केवल को कितना प्यार करता था। केवल के जेब हमेशा चाक और सलेट-पेंसिलों से भरे रहते थे। स्कूल की पिकनिकों पर कांशीराम उसे अपनी साइकिल के आगे बैठाकर ले जाया करता और रास्ते में नई-नई बातें सुनाकर उसे हैरान किया करता। सूरज खड़ा है, पृथ्वी चल रही है। जिस दिन उसने केवल को यह दिखाया कि साइकिल के पैडल उलटे घुमाने से भी वह आगे जाती है, उस दिन केवल की हैरानी की सीमा न रही थी। जब केवल को पान खिलाया जाता, तो उसकी लाली केवल की ठोड़ी तक बह आती। हज़ार कोशिश करने पर भी वह इसे रोक न पाता था और सबके सामने उसे शर्मिन्दा होना पड़ता था।

मन ही मन केवल ने अपने आपको कोसा। कांशीराम का ख़्याल आए भी उसे दस साल हो चले थे। केवल ने सुना था कि कांशी बदचलन है। वह शराब पीता है और जुआ खेलता है। किसी अपराध में वह जेल भी गया था। उस उम्र में केवल की नज़रों में इनसे बढ़कर पाप

कांशी और न कर सकता था। उसका कांशी के प्रति सारा प्यार गुस्से में परिणत हो गया था। अब यदि....काश यही कांशीराम होता।

ऐसा प्रतीत होता था कि कोई स्टेशन आने ही वाला है। केवल अपने आनन्द में मग्न बैठा था। उसे लोगों की बेवकूफ़ी और क्रूरता पर अफ़सोस हो रहा था। एक आदमी को निकाल बाहर करना, केवल इसलिये कि वह शराब पीता है! मगर वह युवती तो फिर उसे ही ताक रही है। आवारा कहीं की।

ट्रेन के पहिये में से एक गान का सा स्वर निकल रहा था। केवल ने उस स्वर की नकल करना शुरू किया। बाकी साथियों ने देखा, केवल गाने की कोशिश कर रहा है। पीपी ने इशारे से क्रिशन को जताया—'इसे और मत देना।'

गाड़ी की रफ़्तार धीमी पड़ गई थी। मजलिस धीरे-धीरे गिलास और बोतलें छिपाने लगी। केवल ने चिल्लाकर कहा—'मत छिपाओ, मत पड़वाह करो किशी की, मत डरो किशीशे!'

उसे प्रतीत हो रहा था कि वह अब सारी दुनियां का मुकाबला कर सकता है। आगन्तुक यात्री ने अपनी साथिन का हाथ पकड़ लिया था और वह एकटक सामने की ओर देख रहा था। सब दोस्त ताश छोड़-छोड़कर अपने बिस्तरों में जाने के लिये उठ खड़े हुए, परन्तु केवल वहीं का वहीं बीच के बर्थ पर हाथ टिकाकर खड़ा था। अब वह चुप था। बड़ी देर से वह निरन्तर टकटकी लगाये आगन्तुक की ओर देख रहा था।

गाड़ी खड़ी हो गई। वचन के मुताबिक दोनों आगन्तुक बाहर

निकलने को उठे, परन्तु वह उनकी किस्मत में नहीं बदा था। दरवाजा खुला और एक अंग्रेज़ अफ़सर दो-तीन सिपाहियों के साथ अन्दर आ धमका। आते ही उसने गरजकर कहा 'टुम कांशीराम है'? 'इन्शा अल्ला! यही हैं जनाब।' साथ के सिपाही ने ख़ुशी से चमकते हुए कहा।

कांशीराम का सिर झुक गया। उसने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिये। सिपाही हथकड़ी डालने लगा इतने में पीछे से केवल ने चीखकर कहा—'कौन पकड़ता है इनको? छोड़ दो इनको। यह मेरा भाई है—छोड़ दो।'

अफ़सर ने विस्मय से मुड़कर देखा। केवल लड़खड़ाता हुआ उसी तरफ़ आने का यत्न कर रहा था। साथ ही वह अंग्रेज़ी में चिल्लाता भी जा रहा था। क्रमशः वह निकट आकर कैदी के गले लग गया। पता नहीं, उसके मुंह से क्या कुछ निकल रहा था, हालांकि वह कहने की कोशिश में था—'मास्टर कांशीराम! क्या तुम्हें याद नहीं? तुम्हीं तो थे, जो मुझे अपने कंधे पर बैठाकर नहर में नहलाया करते थे?'

बाकी चारों मित्र आश्चर्य के पुतले बन रहे थे। सिपाहियों ने बड़ी कठिनता से केवल को हटाया, फिर कैदी से पूछा—'क्या तुम इस छोकरे को जानते हो?'

कांशीराम ने डपटकर कहा—'क्या तुम देख नहीं रहे हो कि इसने शराब पी रखी है? मैं क्या जानूं कि यह कौन है।'

उधर केवल अंग्रेज़ी में सार्जेण्ट को अपनी तरफ़ से बड़ी संजीदगी के साथ समझा रहा था—'मेरा नाम केवल है। मैं इसका भाई हूँ—सगा भाई हूँ।'

सार्जेण्ट ने देखा कि सब लड़के किसी शरीफ़ घराने के हैं और इस वक्त नशे में हैं। अपने कैदियों को बाहर ले जाकर उसने पास ही खड़े हुए गार्ड से उनका ध्यान रखने की ताकीद की। किशन ने बत्तियां बुझा दीं। गाड़ी भी सीटी देकर चल दी।

केवल अपने बर्थ पर औंधे मुंह जा गिरा। वृक्षों में उलझी हुई चांदनी से पृथ्वी पर विचित्र-विचित्र प्रतिबिम्ब बन रहे थे। कांशी ....क्या उसने मुझे नहीं पहचाना?........थके हुये दिमाग़ में सुबह के शब्द झंकृत हो उठे—वास्तविकता, सौन्दर्य........उसने सोचने की कोशिश की, पर शराब सोचने नहीं देती।

गाड़ी खटाखट-खटाखट दौड़ी चली जा रही थी।

———

ज़रें

बम्बई के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो बिजली की गाड़ियाँ चलती हैं उनकी भीड़ का अन्दाज़ा इस बात से हो सकता है कि तीन चार आदमी रोज़ कट जाते हैं। परिस्थिति ऐसी गम्भीर हो गई है कि स्वयं राष्ट्रीय सरकार के मन्त्री चिन्तित हैं और सुना है, मृतात्माओं की शान्ति के लिए बहुत जल्दी ही वे प्रार्थना सभाओं का प्रबन्ध करने वाले हैं। इस ख़बर से जनता को काफ़ी आश्वासन हुआ है और सफ़र को सुविधाजनक बनाने के तरीके खुद भी सोचने शुरू कर दिये हैं। मसलन, बहुत से मुसाफ़िर प्लेटफ़ार्म से उतर कर पटरी की दूसरी तरफ़ खड़े होते हैं ताकि गाड़ी के आने पर दोनों तरफ़ के दरवाज़े काम में लाये जा सकें। सैकड़ों लोग बिलकुल आगे के डिब्बे में घुस जाते हैं, जो वास्तव में मुर्दा मछलियों के लिये सुरक्षित होते हैं। बहुत हद तक यह केवल मन बहलावा है, फिर भी इससे यह ज़रूर ज्ञात होता है कि अपनी सरकार का हाथ बटाने की जनता में कितनी तीव्र भावना है।

हां, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो इस सद्भावना का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं। उनकी गुलामाना मनोवृत्ति अभी भी दूर नहीं हो सकी। गाड़ी में सवार होते और उतरते वक्त उनका व्यवहार ऐसा घृणित होता है कि देखने वालों के सिर शर्म से झुक जाते हैं। अफ़सोस ! मेरी गणना भी इन्हीं लोगों में होती है। मेरी गिरावट का सब से बड़ा सबूत और क्या होगा कि हर रोज़ इन गाड़ियों में सफ़र करता हूँ, और तब भी अभी तक ज़िन्दा हूँ !

लेकिन आज तो मुझे भी कायल होना पड़ा कि किये का फल एक दिन ज़रूर मिलता है। थोड़ी सी कसर रह गई वरना कल मेरे मरने की खबर ज़रूर अखबार में निकल जाती।

हुआ यह कि जिस डिब्बे के बाहर मैं और तीस चालीस और मुसाफ़िर लटके हुये थे, उसके अन्दर से किसी औरत के रोने-चीखने की भयानक आवाज़ आ रही थी। न यह आवाज़ बन्द होती थी और न हमें कोई बताता ही था कि औरत कौन है और क्यों रो रही है। चुनांचे हमें अपनी मानसिक स्थिरता ग़ायब होती हुई दिखाई दे रही थी—वह मानसिक स्थिरता जो फ़ुटबोर्ड पर सफ़र करते वक्त शारीरिक स्थिरता को कायम रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है।

बांदरा स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते हमारी बुरी हालत हो गयी। लेकिन इत्तफ़ाक से वहां एक 'फ़ास्ट' गाड़ी तैयार खड़ी थी, इसलिए बहुत से लोग अपना कौतूहल मिटाए बिना ही उतर कर दूसरी गाड़ी में लटक गए। इस तरह मेरी जान बची और मैंने अपने गुनाहों पर तोबा किया।

कम्पार्टमेंट में खड़े होने की जगह मिल जाने पर मैंने उस रोने-

धोने का भी अनुसन्धान किया। मैंने देखा कि बड़े फट्टे पर साधारण जनता के अलावा जनता के तीन सेवक, यानी पुलिस के सिपाही भी विराजमान हैं, और इन्हीं के कदमों में खिड़की के नीचे, गाड़ी की दीवार से मुँह लगाए एक औरत, जिसने काला दुपट्टा ओढ़ रखा है, बिलख-बिलख कर रो रही है।

उपर्युक्त ग़ुलामाना मनोवृत्ति से मजबूर होकर पहिले मैंने यही सोचा कि ज़रूर कोई सरकारी कारवाई हो रही है। लेकिन जब कोई ज़ंज़ीर, बेड़ी, रस्सी, लाठी, बन्दूक नज़र नहीं आई और सिपाहियों के चेहरे भी सर्वथा तटस्थ, बल्कि कुछ हद तक द्रवित नज़र आए और साथ ही बाकी मुसाफ़िरों को भी बिलकुल स्वाभाविक रीति से बैठे या खड़े हुए देखा, तो मुझे अपनी ग़लती का एहसास हुआ। कुछ क्षणों के लिए मैंने भी स्वतन्त्र नागरिकों की तरह सभ्य और स्वाभाविक होने की कोशिश की।

मगर औरत थी कि बेतहाशा रोए जा रही थी। चाहे कुछ भी कहो, उसके रोने से डिब्बे पर एक आतंक-सा छा गया था, वरना सब मुसाफ़िर एक साथ चुप क्यों हो जाते? औरत के लिबास से ज़ाहिर था कि यह पश्चिमी पंजाब या सीमाप्रान्त की रहने वाली है। ख़ुद पंजाबी होने की हैसियत से क्या मेरा फ़र्ज़ नहीं था कि उसकी कुछ मदद करूँ?

मैं यह सोच ही रहा था कि खिड़की से आती हुई धूप में मोती की तरह चमकता हुआ एक आँसू सिपाहियों के सामनेवाले फट्टे, यानी मेरी तरफ़ पीठ किये बैठे हुए एक मुसाफ़िर की आँखों से गिरा। इस शख़्स के बाल बिखरे हुए थे, कमीज़ मैली और जगह जगह से फटी हुई थी और वह अपना सिर झुकाए माथे पर हाथ धरे बैठा था। इस

आँसू ने औरत को, इस आदमी को और सिपाहियों को मेरी कल्पना में फिर इकट्ठा कर दिया।

मेरे करीब दो लड़कियाँ खड़ी थीं, जो शायद किसी फ़िल्मी स्टूडियो में काम करके लौट रही थीं। और उनके पीछे, गाड़ी के आधे बन्द दरवाज़े के साथ टिके हुए, एक ऐसे सज्जन खड़े थे जिनके साथ एक बार किसी दूसरे वातावरण में मुलाकात हो चुकी थी, लेकिन याद नहीं आ रहा था कि कब और कहां? इसलिए वह मुझ से और मैं उनसे संकोच कर रहा था। लेकिन इन्सान का मन भी कैसी अद्भुत चीज़ है। उस आंसू को गिरते देख कर जब मैं चौंका तो साथ ही यह भी याद आया कि उस सज्जन को मैंने अपने मित्र नन्दलाल के साथ कभी देखा था। उनका नाम अब भी मुझे याद नहीं आया, मगर संकोच मिटाने का अवसर तो मिल ही गया था।

"कहिए, नन्दलाल जी यहीं हैं या नासिक लौट गये हैं?"

इस सवाल पर उनके मन का संकट भी दूर हुआ और वे मुस्करा कर बोले, "देखिए, अब मैंने आपको पहिचाना है। बड़ी देर से सोच रहा था कि आपको कहीं देखा है, मगर याद नहीं आ रहा था...."

"अजी कोई बात नहीं। मैंने तो फ़ौरन ही पहिचान लिया था। कहिए, ठहरने का कोई प्रबन्ध हुआ या नहीं?"

चुनांचे कुछ मतलब, कुछ बेमतलब की बातें होने लगीं। औरत बराबर रोए जा रही थी। मैंने देखा कि उसकी उम्र चालीस बरस के लगभग होगी। उसने अपना काला दुपट्टा माथे पर जिस ढंग से बांध रक्खा था, उससे पता चलता था कि वह ज़िला हज़ारा के पहाड़ों की

रहने वाली है और गुज्जर जाति की है। उसके कानों में बड़ी-बड़ी बालियां थीं और उनके इर्द-गिर्द बालों की पतली गुंथी हुई वेणियां बिखरी-बिखरी लटक रही थीं।

मैंने अपने साथी से पूछा : "आपका क्या ख़याल है, यह क्यों रो रही है?"

"अरे भाई, हमारी तरफ़ के लोगों की ऐसी ही आदत है। जहां किसी के हथकड़ी पड़ गयी, घरवालों ने यही समझ लिया कि वह हमेशा के लिए चला गया।"

मैंने लड़कियों के थोड़ा पास सरक कर उस नौजवान को, जिसका आँसू गिरा था, अपने साथी के दृष्टिकोण से झांक कर देखा। उसके दाईं तरफ़ उसी के ढंग का एक और लड़का बैठा हुआ था। दोनों का एक एक हाथ हथकड़ी में बन्द था, और उसकी ज़ंजीर खिड़की के पास बैठे हुए एक चौथे सिपाही के हाथ में थी जिसकी सिर्फ़ वर्दी दिखलाई पड़ती थी। दोनों लड़के गोरे चिट्टे, स्वस्थ और खूबसूरत थे, जैसे बम्बई में नए नए आये हों। एक का सिर झुका हुआ था और दूसरा बड़ी बड़ी आँखों से छत की तरफ़ देख रहा था। शायद दोनों भाई थे।

मैंने अपने साथी की बात का समर्थन करते हुए कहा—"आप ठीक फ़रमाते हैं। मुझे कई बरस बम्बई में रहते हो गए। लेकिन किसी मराठी या गुजराती औरत को इस तरह खुलेआम रोते-चीख़ते नहीं सुना।"

"यहाँ के लोग पढ़े-लिखे हैं न? हमारी तरफ़ तो एकदम जहालत है।"

उनकी यह दलील मेरी समझ में नहीं आई। मराठी गुजराती औरत से मेरा मतलब था ग़रीब तबके की औरतों से, जो लाखों की संख्या में मर्दों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर मेहनत करती हैं। भला उनमें कितनी पढ़ी-लिखी होंगी? हाँ, पढ़ने-लिखने से अगर उनका अभिप्राय जीवन के कठोर संघर्ष से मिलने वाली शिक्षा से था, तो ठीक। इस कठोरता ने बम्बई के मज़दूरों को मशीन में पीस-पीस कर कुछ संयम भी दे दिया है, और आत्मसम्मान भी।

"लेकिन", मैंने कहा, "हमारी तरफ़ की पुलिस भी तो ऐसी नहीं होती। उनके हत्थे जो आदमी एक बार चढ़ जाये, सही सलामत थोड़े लौटता है?"

"यह भी ठीक है", उन्होंने जवाब दिया।

ज़ाहिर था कि उन्हें इस किस्म के वार्तालाप में कोई महत्त्व नहीं नज़र आ रहा था। और फिर भीड़-भाड़, गाड़ी के और उस औरत के शोर में बातें करना कहाँ आसान था?

कुछ देर तक मैं सामने बैठे हुए सिपाहियों को देखता रहा। उनमें से एक पाँव हिलाहिला कर अपने चमकते हुए जूतों को सराहता हुआ बीड़ी पी रहा था। दूसरा मुजरिम लड़कों की ही उम्र का होगा। उन्हीं की तरह का अल्हड़पन इसके चेहरे पर भी पाया जाता था। साँवला रंग, चिकने बालों पर तिरछी अदा से रक्खी हुई किश्तीनुमा टोपी—फ़र्क केवल इतना था कि यह पालतू था, और वह गंवार थे। तीसरा सिपाही खुर्राट मालूम होता था, चौड़ा चौकस चेहरा, बड़ी बड़ी मूंछें। तीनों अत्यन्त साधारण भाव से बैठे थे, लेकिन एक ऐसे ढंग से जो

उत्तरी भारत के पुलिस वालों के लिये विचित्र और अकल्पनीय है और जिसे अंगरेज़ कौम अपनी खूबी समझती है।

मैं नहीं जानता कि मेरे साथी ने भी यह सोचा या नहीं कि दोनों मुलज़िम हमारे हमवतन हैं—कि वह औरत परदेस में है और एक अजनबी गाड़ी के फट्टों से सिर टकरा कर रो रही है—कि उसका अपना वातावरण वह पहाड़ है जिसकी निचली घाटियों में लुकाठ, गरंडे और चोटे पैदा होते हैं—वह फल जो सिर्फ़ वहीं चखे और खाएजा सकते हैं—और इन्हीं घाटियों में भेड़-बकरी चराना इस जाति की औरतों का पेशा है। उनकी बकरियाँ 'बहेकड़' नामक झाड़ी के पत्ते खुशी से खाती हैं, जिसके फूल सफ़ेद और कड़वे होते हैं मगर जिनके सिरे पर शहद की एक मीठी बूंद छिपी रहती है। गुज्जरों की लड़कियाँ अपने काले दुपट्टे में इन फूलों की झोलियाँ भर भर कर छाती से लगा रखती हैं और ढोर हाँकते वक्त शहद चूसा करती हैं। उनके गोरे और चौड़े माथे पर काली, कस कर बंधी हुई चुन्नियाँ, गालों पर लटकती हुई बारीक गुँथी वेणियाँ और गुनगुनाने वाले बालियों के छल्ले बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। शहर के लड़के गुज्जरों के डर के मारे दूर ही दूर से उन्हें ललचाई हुई नज़रों से देखते हैं। यह औरत भी कभी जवान थी, कभी इन्हीं लड़कों को गोद में उठाये हुए चश्मों और आबशारों की सैर कराया करती थी....

इसके विरुद्ध शायद मेरे साथी ने सोचा हो कि यह औरत मुसलमान है। यह लड़के भी मुसलमान हैं। इसीलिए नीच कर्म करते हैं। इन्होंने ज़रूर ही कोई संगीन जुर्म किया होगा। इन्हीं लोगों ने हमारे घर जलाए थे, हमारी बहू बेटियों पर पाशविक अत्याचार किए थे। इनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्हें हिन्दुस्तान से निकाल कर उसी जहन्नुम में भेज देना चाहिए जिसे पाकिस्तान कहते हैं। हमारे देश

में इन वहशियों का क्या काम....या शायद उसने कुछ भी न सोचा हो। मैं नहीं जानता। आखिर कोई ऐसी विशेष घटना तो थी नहीं। रोना सुनकर लोग चुप ज़रूर हो गये थे, मगर ज़्यादा माथा-पच्ची तो वही करे जिसका कोई लगाव हो, या जिसे दूसरा कोई काम न हो।

कुछ ही मिन्टों में गाड़ी दादर स्टेशन पर आ खड़ी हुई और डिब्बा यूं खाली हो गया जैसे किसी हौज़ का नल खोल दिया गया हो। इस बहाव में मेरा साथी भी उतर गया, कैदी, सिपाही और औरत भी। औरत ने लड़कों के साथ-साथ रहने की कोशिश की, लेकिन बड़ी मूंछों वाले सिपाही ने गुस्से से नहीं, बल्कि शायद कायदे से, उसे ढकेल दिया।

औरत अब चुप हो गयी थी। पल्ले से आँसू पोंछ लिए थे, जैसे फ़र्ज़ का एक हिस्सा कामयाबी से पूरा कर चुकी हो। अब कोई न कह सकता था कि कुछ क्षण पहिले वह धाड़ें मार मार कर रो रही थी।

डिब्बा नए और पुराने मुसाफ़िरों से फिर खचाखच भर गया। इस हलचल में मुझे भी बैठने की जगह मिल गयी। यह वही जगह थी जहां पहिले बड़ी बड़ी मूंछों वाला सिपाही बैठा हुआ था। मैंने साथ वाले मुसाफ़िर से पूछा—'क्यों साहब, उन लड़कों ने क्या जुर्म किया था?'

जवाब में वह ज़ोर से हसा। फिर कहने लगा—'कुछ न कुछ चार सौ बीस ज़रूर किया होगा, और क्या? किए का फल एक न एक दिन मिल ही जाता है।'

उसके लहज़े से मैं फ़ौरन जान गया कि वह न सिर्फ़ पंजाबी है, बल्कि उस औरत के ही हज़ारा ज़िले का है। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही—इतनी बेरूखी। औरत कितने समय तक उसके घुटनों के पास बैठी रोती रही और इसने इतना भी नहीं पूछा कि क्या बात है? अगर यही गाड़ी पंजाब के किसी इलाके में होती तो क्या यही शख़्स उछल-उछल कर सवाल न पूछता? अपनी राय न देता? जिरह न करता? मुलज़िमों और पुलिस तक को बहस में शामिल न कर लेता? और बम्बई में यह कितना बदला हुआ है?

मैंने कुछ तलखी से जवाब दिया—'छोटे चार सौ बीसों को ज़रूर मिल जाता है, मगर बड़े बड़े चार सौ बीसों को नहीं मिलता।'

'कभी न कभी उन्हें भी मिल जाता है।' यह कह कर वह फिर ज़ोर से हंसा।

मुझे इतनी ज़्यादा खुशी की कोई बात नहीं नज़र आई। मैंने फिर उसे ग़ौर से देखा। उसका नंगा सिर कुछ कुछ गंजा था और अगल बगल बाल बेतरतीब से माथे पर आये हुए थे। हंसने से उसके चेहरे पर सैकड़ों लकीरें पड़ जाती थीं, मूंछें झाड़ी की तरह फैल जाती थीं और उनके नीचे के दांत एक सफ़ेद जंगले की तरह मालूम होते थे जिसकी पट्टियाँ थोड़ा-थोड़ा स्थान छोड़ कर लगाई गई हों। तदनुसार उसके हाथ भी मज़बूत और खुरदुरे थे। इनमें वह एक लोहे का औज़ार पकड़े हुए था। उसके खाकी कोट को देख कर मुझे अन्दाज़ा हुआ कि वह किसी बस कम्पनी में काम करता है।

'आप ज़िला हज़ारा के हैं न?' मैंने कहा।

इस सवाल का उसने बड़ी संजीदगी और नम्रता से उत्तर दिया—"जी, मैं मानसहरे का रहने वाला हूँ। और आप ?"

"मैं रावलपिंडी का हूँ।"

"अच्छा, ठीक....फ्रन्टियर मेल तो अब वहाँ नहीं जाती न ?"

"वह तो बरसों से बन्द हो गई है। अब सिर्फ़ दिल्ली तक ही जाती है, और वहाँ से दूसरी गाड़ी पकड़नी पड़ती है।"

"हाँ।" यह कह कर उसने इस तरह की साँस ली जैसे उसमें फ्रन्टियर-मेल के फ्रंटियर तक न जाने का दुख छिपा हुआ हो।

कुछ क्षण बाद वह फिर ज़ोर से हंसा और जल्दी जल्दी कुछ बोल गया जो मैं ठीक ठीक समझ भी नहीं सका। शायद उसने कहा कि बम्बई की तवायफ़ों को अब कव्वाल और तबलची नहीं मिलते। सब पाकिस्तान भाग गए हैं। वह न अच्छी तरह पंजाबी बोल सकता था, न उर्दू। बम्बई में रहते हुए उसे काफ़ी अर्सा हो गया है, ऐसा प्रतीत होता था।

उसने मेरे बाज़ू पर हाथ रख कर कहा—"बाबूजी, एक बात बताऊँ तुमको। अब वह ज़माना आने वाला है जब दुनियाँ में औरतें राज करेंगी। हर बात में औरतों का स्थान ऊँचा हो जायेगा और मर्दों का नीचा। देख लेना तुम।"

यह बात उसने इतनी ऊँची आवाज़ में कही जैसे ख़ास तौर पर डिब्बे की औरतों को भद्दे ढंग से सुना कर कह रहा हो।

डिब्बे में वह लड़कियां अब भी खड़ी थीं जिनके लिबास और अंदाज़ से ज़ाहिर होता था कि वे किसी फ़िल्म स्टूडियो में काम करके लौट रही हैं। मैंने देखा कि उसका इशारा उन्हीं की तरफ़ है। अकस्मात् मुझे उसके बार-बार हँसने का असली कारण मालूम हुआ। यह शख़्स तमाम वक्त इन लड़कियों के ध्यान में मग्न था—ऐसा मग्न कि बुढ़िया के रोने-धोने की इसे रत्ती भर भी परवाह नहीं हुई।

मेरे दिल में उसके लिए सख़्त घृणा पैदा हुई। जी में आया कुछ जवाब न दूँ और मुंह फेर लूँ। मगर बातचीत उसके साथ मैंने शुरू की थी। जवाब न देना भी मुश्किल था। कुछ सोच कर मैंने कहा—"औरत मर्द का असली दर्जा तो बराबरी और बाहमी इज़्ज़त का दर्जा है। ऊँच-नीच का सवाल तो अमीरों के घरों में उठता है। ग़रीबों की औरतें भला पर्दा कब करती हैं?"

"क्यों नहीं, करती हैं।"

"बहुत कम। आपके अपने इलाके में जवान लड़कियां खुले आम भेड़-बकरी चराती हैं, घाटियों में गाती फिरती हैं, खेतों में मर्दों के साथ काम करती हैं।"

यह सुन कर वह कुछ झेंप-सा गया और फिर कमज़ोर-सी आवाज़ में बोला—जैसे मेरे फ़ैसले के खिलाफ़ अपील कर रहा हो—"मगर हमारी औरतें यह चूना-सुर्खी तो नहीं मलती हैं न?"

"क्यों, क्या वह बालियां नहीं पहिनतीं, बाल नहीं संवारतीं? दुपट्टा माथे पर किस बेमिसाल ढंग से बांधती हैं? हां; उनके बालाई

जैसे सफ़ेद और गुलाब के फूल जैसे नर्म चेहरों को सुर्ख़ी चूने की ज़रूरत नहीं होती इसलिए नहीं लगातीं।"

एकाएक वह पीछे को झुक गया और सिर को डिब्बे की दीवार से लगा कर इस तरह मेरी तरफ़ घूरने लगा जैसे बड़े गुस्से में हो, जैसे अचानक उसे माँ-बहन की गाली दे दी गयो हो।

कुछ देर तक इसी तरह देखने के बाद उसने पूछा—"तुम क्या काम करते हो, बाबूजी ?"

मैंने जान लिया कि जानबूझ कर उसने यह निरर्थक सवाल किया है।

"यहीं एक दफ़्तर में काम करता हूँ।" मैंने जवाब दिया।

वह फिर ख़ामोश होकर मेरी तरफ़ देखता रहा। फिर उसने अपने खाकी कोट से दो बीड़ियाँ निकालीं। एक मुझे दी दूसरी खुद सुलगा ली। दो एक कश लगाकर उठ खड़ा हुआ, हालाँकि कोई स्टेशन नहीं आया था।

"अच्छा, आदाब अर्ज़।" उसने कहा और अपना हाथ बढ़ाया। मैंने भी आदाब अर्ज़ किया और हाथ मिलाया। उसका कुछ लोहे का सामान, काग़ज़ में लिपटा हुआ, ऊपर वाले फट्टे पर पड़ा था। इसी फट्टे के नीचे वे एक्स्ट्रा लड़कियाँ खड़ी थीं। भीड़ में सरकता हुआ वह उनके पास पहुंचा और सलीके से उन्हें ज़रा हटने को कहा। लेकिन उसका कद छोटा था और हाथ बड़ी मुश्किल से सामान तक पहुँचते थे। उसकी कोशिशों को देखकर लड़कियाँ हँसने लगीं। आखिर अपने

शरीर को खींचखांच कर, अपने ढीलम-ढालम कोट की अच्छी तरह नुमाइश करके, वह सामान उठाने में कामयाब हुआ। इन लड़कियों की हंसी के जवाब में वह ख़ुद भी, मेरी तरफ़ देखता हुआ, उसी ठाठ से हंसा जिस ठाठ से पहले हंसा था और जिस ठाठ से तमाम वक्त वह हज़ारे की औरत रोई थी।

गाड़ी रुकी और वह निकल गया।

———

दोपहर का सर्वनाश

एक बात में हम लोग शेर हैं। हवाई जहाज़ बनाने में नहीं, टेलीफ़ोन या वायरलैस बनाने में नहीं, गप्पें हांकने में। तेरहवीं सदी में लिखता हुआ चीनी उपन्यासकार शी नै एन इस पूरबी प्रवृत्ति का खूब व्यवच्छेद करता है—

'जो वस्तु मुझे सब से ज़्यादह आनन्द देती है वह है अपने दोस्तों के साथ बैठकर गोष्ठी करना। यदि मेरे दोस्त मेरे घर पर केवल इस कारण न आ सकें कि हवा तेज़ थी या बारिश की वजह से ज़मीन लथ-पथ हो रही थी या उनकी तबीयत नासाज़ थी, तो मेरे दिल पर चोट लगती है। अपना एकान्त मुझसे सहा नहीं जाता....

'मेरे सभी मित्र उदारचित्त अथवा सुशिक्षित हैं, किन्तु फिर भी हमने अपने बहुमूल्य वार्तालाप की कभी लेख-स्मृति रखने की चेष्टा नहीं की। क्यों?

(१) क्योंकि हम आलसी हैं और हमें यशस्वी बनने की कोई अभिलाषा नहीं।

(२) बातें करना सुखप्रद होता है, लिखना संकट।

(३) मरने के बाद तो हम अपनी लिखाई को पढ़ नहीं सकते, फिर लेख-स्मृति रखने से फ़ायदा क्या?

(४) जो कुछ हम आज लिखें वह शायद अगले साल हमें एकदम निकम्मा मालूम हो।........'

लेकिन शायद तर्क-प्रिय पाठक यह पूछ बैठें कि यदि यह बात थी तो शीनैन एक उपन्यासकार कैसे बन गया? इसका भी वह खूब जवाब देता है—'मैं यह नावल इसलिए लिखता हूँ कि—

(१) जब मेरे मित्र न आ सकें, तो मेरा समय कट जाय।

(२) यह कहानी तो एक चूं चूं का मुरब्बा है जो मुझे कभी शोहरत नहीं दिला सकती।'

कितना दुर्लभ स्पष्टवाद। लेकिन ईश्वर जाने हमारे नौनीतराय को इस फ़िलासफ़ी से क्यों चिढ़ है? भूतग्रस्त की तरह अपनी रिसर्च पुस्तकों के थैले उठाये रेलवे स्टेशनों पर टिकट कटाता फिरता है। आज इस शहर में है तो कल उससे चार सौ मील परे। क्षण भर के लिए निकम्मा रहना उसे असह्य है। उसके विचार में प्राचीन आर्य-सभ्यता की कुंजी उसके पास है अब केवल ताले का सूराख़ टटोलना बाकी रह

गया है। इसी के लिए उसने अपना जीवन दान दे डालने में गौरव समझा है।

जहाँ पहुँचता है, बेचारा पहले कुछ दिन खूब चुस्ती से काम करता है। फ़ैसला कर लेता है कि कम से कम एक पुस्तक तो वहीं बैठ कर लिख लेगा। फिर देखता है कि वहां के लोग उसे जनूनी समझने लगे हैं, इसलिए कुछ कुछ उनके नज़दीक जाने की कोशिश करता है। नज़दीक पहुँचा नहीं कि फिर उसी बवंडर में। वह गप्पमंडली जमती है कि थमने में नहीं आती। सुसंस्कृत होने के कारण बेचारा किसी का कुछ कहता नहीं, केवल संकेत करता है। लेकिन भला संकेतों से क्या होता है? आख़िर दो-एक महीने के बाद किताबें उठाकर फिर सफ़र अख़्तियार करता है। ....

आजकल नौनीत बनारस में है। अच्छे चालीस दिन लगाकर उसने व्याकरण अथवा बौद्ध धर्म का अध्ययन किया है। बड़े बड़े पंडितों व महामहोपाध्यायों से मदद ली है। बल्कि एक चीनी भिक्षु से चीनी भाषा के भी कुछ अक्षर सीखे हैं। किन्तु आज इकतालीसवां दिन है।

हिन्दू यूनीवर्सिटी के ही एक हॉस्टल में वह टिका हुआ है। आज पाकशाला से दोपहर का खाना खाकर लौट रहा था कि एक परिचित व्यक्ति उसे खींचकर अपने कमरे में ले गया। वहां एक अंग्रेज़ प्रोफ़ेसर के साथ कुछ नवयुवकों की पश्चिमी अथवा भारतीय संगीत के विषय में बहस हो रही थी। एक घंटा इस बहस में बक-झक कर चुकने के पश्चात् नौनीत ने सोचा—'यह मैं क्या कर रहा हूँ ?' और भागा। लेकिन किस्मत इतने सस्ते में कहाँ छोड़ती है! बाहर बूंदें पड़ रही थीं। कुछ दूर चलकर उसने संयोग-वश पीछे मुड़कर देखा तो क्या देखता है, बहस-कारियों में से एक महाशय एक हाथ से धोती थामे और दूसरे

में छाता लिये बढ़ते चले आ रहे हैं। नौनीत ने अपने कदम तेज़ किये और फ़ैसला किया कि सड़क का मोड़ लांघकर दौड़ना शुरू कर देगा। लेकिन यकायक पीछे से आवाज़ पड़ी—

'अरे भाई ठहरो, छाते के नीचे आ जाओ।'

नौनीत ने आंखें बंद कर, विधाता का स्मरण कर, अपने आप को उनके सुपुर्द कर दिया। इतनी दलील से किये गये प्रस्ताव को कैसे अस्वीकार कर सकता था? इकट्ठे दोनों नौनीत के हॉस्टल तक पहुँचे। धन्यवाद कहके जब नौनीत बरामदे में आया और कमरे का ताला खोलने लगा तो देखा कि बाबू अब भी वाटिका में खड़े हैं। सर्वनाश। शिष्टाचार से प्रेरित होकर नौनीत ने कहा—'आइये, अन्दर आ जाइये।'

अभ्यागत ने हंसते-हंसते इन्कार किया—'नहीं, नहीं, आपका आराम करने का समय होगा', किन्तु उसकी आंखों से स्पष्ट था कि बैठकर दो बातें कर लेने में उसे तनिक भी आपत्ति न होगी।

चुनांचे वही हुआ जिसका नौनीत को डर था। अभ्यागत ने कुर्सी पर चौकड़ी जमा कर बातचीत शुरू की—

'मेरा नाम नलिनी कान्त सेन है, आपका शुभ नाम?'

'नौनीत।'

'ओह नौनीत'—बंगाली बाबू ने तसल्ली से दुहराया। फिर एक

क्षण सोचकर,—'आपका चेहरा हमारे एक काश्मीरी मित्र से बहुत मिलता जुलता है।'

'अच्छा आप काश्मीर हो आये हैं।' नौनीत ने कुछ कहने के लिए कहा।

'ओह हमने काश्मीर बहुत देखा। तीन महीने उधर ठहरा। पहलगाम, पंचतरनी, अमरनाथ, खीर भवानी, मानस बल, सब देखता है। आप अमरनाथ गिया है ?'

"जी ?....मैं...."

नौनीत फ़ैसला न कर सका कि सच बोलना ठीक रहेगा या झूठ। वास्तव में ऐसे असमंजस की ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि नौनीत क्या कह रहा है या नहीं कह रहा है, नलिनीकान्त को इससे प्रयोजन नहीं था।

'ओह, हामें काश्मीर कभी भूलने नहीं सकता। जब से हमने आपको देखा है हमको लगातार काश्मीर आंखों के सामने दीखता है। आपका शकल हामरे एक दोस्त प्रेमनाथ काक से बहुत मिलता है। प्रेमनाथ काक को जानता है आप ?'

'नहीं, मेरा यह सौभाग्य नहीं हुआ'—नौनीत ने थके हुए अन्दाज़ से घड़ी की ओर देखते हुए कहा।

लेकिन निशाना ठीक नहीं बैठा। कुर्सी पर वीरासन लगाकर नलिनी कान्त अजीब अदा से छत की ओर देखता हुआ सिर हिला

रहा था—'काश्मीर । हामें काश्मीर नहीं भूलने सकता ।' फिर एकदम चौकन्ना होकर—'आपने मानस बल देखता है ?'

'हां'—नौनीत ने आखिर एक झूठ टिका ही दिया। उसे डर था कि 'नहीं' कहने पर कहीं मानस बल का चित्रण आरंभ न हो जाये।

'हामरे वास्ते वह एक हिस्ट्री हो गया है। वह हिस्ट्री सुनोगे ?' नलिनीकान्त ने एक ठंडा सांस भरते हुए पूछा। 'बेशक' नौनीत ने एक ठंडा सांस भरते हुए जवाब दिया। 'हि हि हिहि हि हि, वैसे तो कुछ भी नहीं है। ऐसा बात रोज़ होता है। हाम, प्रेमनाथ काक—जिसका शक्ल आपके साथ मिलता है—और दो ठो और काश्मीरी मित्र खीर भवानी का मन्दिर देखने गया था। उन दिनों में हिन्दु मुसल्मान के दंगे का ज़ोर था। जब हम खीर भवानी पहुँचता था तो एक दम से सायंकाल हो गया। हामरा को उधर पता लगा कि मानस बल वहां से पांच मील है। हम सोचा कि बाबा ज़िन्दगी का तो कुछ भरोसा नहीं है। ईश्वर जानता है फिर कभी ए रकम देश में आना होगा या नहीं होगा, फिर अच्छा है यदि मानस बल देखकर वापस लौटा जाये। किन्तु हामरा मित्र तो राज़ी था नहीं। पर हम सोचा हम अकेला ही जायेगा, कुछ पर्वाह नहीं। हाम बंगाली है, इस वास्ते हमें कोई किस वास्ते छेड़ेगा ? सो हमने एक पाव मिठाई अपना रूमाल में बांध लिया और चल पड़ा।

'चलता गया, चलता गया। मौसम अच्छा था और दृश्य सुन्दर था। किन्तु मानस बल के एक मील इस तरफ़ ही सायंकाल गम्भीर होना शुरू हो गया। सड़क एकदम निर्जन था, और दूर का पहाड़ भी एकदम निकट और भयानक स्वप्न की तरह छाती पर बैठता था। बंगाली

में adventure का स्पिरिट बहुत होता है, किन्तु बाबा ऐसा समय में बड़े बड़े शूरवीर का मन घबड़ा जाता है। अपना देश से दो हजार मील का दूरी पर हैं ? एकदम से अकेला, और फिर ऐसा देश में जिधर पहले से छुरी चलता है, घबड़ा जाता है कि नहीं ? हर क्षण हम दाएं बाएं देखता था, कभी कोई पक्षी पेड़ को छोड़कर उड़ता था तो हामरा शरीर सिर से पैर तक सन्न हो जाता था। लेकिन हाम रुका नहीं, चलता गया। आखिर हमरा को अपनी ढिठाई का फल मिल गया। जिस बात का डर था वही हुआ। हमरा को अकेला देखकर एक काश्मीरी मुसल्मान छुरे की किसम का हथियार हाथ में लिये चुपके से एक खेत की आड़ में से निकला और हामरे पीछे हो गया। पहले तो हामरी टांग में पानी पड़ गया फिर हम सोचा कि अब ठहरने से काम नहीं चलेगा। हम तेज हो गिया—जैसा नौनीत भाई तुम आज हमको देखकर तेज हो गिया था, हि हि हि—लेकिन अपांग दृष्टि से हमने देखा कि वह भी तेज हो गिया है। हमने और भी तेज चलने की कोशिश की, किन्तु क्या फायदा था, वह तो यमराज की तरह हम पर झपटता आ रहा था। कुछ पूछो मत भाई, जो हमरा साथ उस समय में गुज़रा, अपना माता याद आया, अपना सारा जीवन आंखों के सामने घूम गया। फिर सोचा कि नहीं, बग़ैर बचाव करने के मरना अच्छा नहीं। बग़ल में हमको एक टीला दिखाई दिया। वह लाल टीला आपने देखा है न ?'

'हां'—नौनीत ने एक और झूठ सज्जित किया। उसे नलिनी कान्त की जान की इतना फ़िकर नहीं हो रही थी जितना उसकी जर्रह की।

'हाम भागकर उस टीले पर चढ़ गया। वह भी पीछे आया। अब हामरे को विश्वास था कि ओ हमें छोड़ेगा नहीं। हम सोचा हम ऊपर

से उस पर पत्थर फेंकेगा। यदि फिर और मुसल्मान आ गया तो हाम लड़ते-लड़ते प्राण दे देगा।'

'शाब्बाश, वाह वाह।'

'किन्तु चोटी पर पहुँच के हमने देखा कि पत्थर तो छोड़ो वहां पर मुट्ठी भरने के वास्ते मिट्टी भी नहीं है। कोई पेड़ भी नहीं कि हम लकड़ी काट सकता। हाम हताश होकर पृथ्वी पर बैठ गया! उस हत्यारे का एक एक कदम हामरा छाती में चार-चार मुक्का मारता था आख़िर वह हामरे सिर पर आकर खड़ा हो गया। जब बत्ती बुझने लगता है, तो एक बार ऊपर को उठता है। हम जोर से बोला—

'क्या बात है?'

'वह कहता है—सलाम बाबू, पैसा।'

यह कहकर नलिनीकान्त बाबू कुछ क्षण के लिए ऐसे हंसा जैसे किसी ने पीछे से आकर उसे गुदगुदी कर दी हो—

'क्या करेगा पैसा को?'

'तम्बाकू लेगा।'

'हामने उसे एक आना निकालकर दिया। कुछ देर हाम उस पाजी की तरफ़ रूमाल मुंह पर रख कर देखता रहा। जब चला गया तब हामने मुख पोंछा और देखा कि मानस बल झील भी सामने ही नज़र आता है। झील अभी दूर था, किन्तु हामरे मन का अवस्था कुछ ऐसा था कि वहीं से देखना हामको काफ़ी मालूम हुआ। और साथ में दृश्य

सचमुच नज़दीक से ऐसा सुन्दर होने नहीं सकता था। पूर्णिमा का चांद बादलों में से निकल-छिप कर रहा था, और अस्ताचल का एक चौड़ा अन्तिम किरन बादलों को काटता हुआ पानी में पड़ रहा था। बहुत सुन्दर था। उधर हम बहुत देर बैठा रहा। जब उठा तो एकदम से रात हो चुका था।'

'हामरा किस्मत! जब वापस लौटा तो रास्ता भूल गया। एक घंटा भर इधर से उधर भटककर हम देखा कि अब वापस जाना हो नहीं सकता है। एकदम निराश होकर हम एक खेत के किनारे बैठ गया और अपने भाग्य पर रोने लगा।'

'कुछ देर के बाद जब हमने सिर उठाया तो देखा कि एक काश्मीरी छोकरी खेत में कुछ काम कर रही है। हाम उसके नज़दीक जाकर बैठ गया। ईश्वर जाने हमको ऐसा प्रतीत हुआ जैसा कि हम अपने एक चिर परिचित बन्धु के पास आ गया है।'

'पता नहीं आपने भी ऐसा अनुभव किया है या नहीं, किन्तु हमारा यह विश्वास है कि जिस स्थान के साथ, जिस वस्तु के साथ, या जिस व्यक्ति के साथ, हमारा विशेष सम्बन्ध भविष्य में होना है, उसके साथ पहली दृष्टि पड़ते ही एक अद्भुत आकर्षण हो जाता है, जैसे हाम उसकी इन्तज़ार ही में था। टामस हार्डी की पुस्तक 'टैस' में भी ऐसा ही होता है न। एञ्जल क्लेयर टैस के साथ साधारण एक दो बात करके चला जाता है, किन्तु यह घटना दोनों के हृदय में एक विचित्र मिलन सुख दे जाता है। आपने टैस पढ़ा है न?'

'हां' इस बार नौनीत ने सच कहा। वह बाबू के मानस बल से लौटने पर आश्वस्त था।

'हामने छोकरी को धीरे से कहा—'देखो कुड़ी, हामको इधर रात हो गया है। हम परदेसी हैं। हाम बहुत दूर कलकत्ते से आया है। बताओ हाम क्या करेगा ?'

'पहले तो वह कुछ बोला नहीं। ऐसा एक बार हामरी तरफ़ देखा फिर अपना काम में लग गया। वह बहुत सुन्दर था। कपोल का इतना गोल लाइन हमने कभी देखा नहीं है।'

यह कहते हुए नलिनीकान्त ने पलक मारकर हंस दिया, इसलिए कि नौनीत से उसका परिचय नया था, अतः वह शायद कहीं उसकी कहानी का वास्तविक अर्थ न समझकर बुरा न मानने लगे। नौनीत को यह सादगी अच्छी लगी। भिन्न प्रान्तों के लोग कई बार उल्टे इशारों से सीधा मतलब भी निकाल लेते हैं।

'हामने फिर कहा उसको—'देखो कुड़ी, हाम तुमरा देस में आया है, तुम्हारा धर्म है हामरा मदद करना। तुम हामरे देश में आओ तो हम तुमरे वास्ते सब कुछ करेगा, कि नहीं करेगा ?'

'इसका भी कुछ असर हुआ नहीं। वह चुपचाप अपना काम करता गया। हम बोला—'बहुत अच्छा हम अब किधर जाने सकता नहीं सो इधर ही बैठेगा, और क्या करेगा।'

'इस पर वह हामरे पास आकर खड़ा हो गया। हामरी ओर देखता रहा। ईश्वर जाने वह क्या सोचता था ? फिर बोला—'अच्छा, हमरे साथ आओ।'

'हम उठा और उसके पीछे पीछे चल पड़ा। उसने हमें बताया कि

उसका माँ-बाप मर चुका था और वह अपने दो भाई के पास रहता था। हामने सोचा शायद उसके साथ-साथ चलने से कोई बुरा मनायेगा, इसलिए कुछ दूर पीछे-पीछे चला। इस समय चन्द्रमा बहुत सुन्दर निकल आया था। धान के खेत में कुछ लाल फूल खिल रहा था, जो बहुत भला था। ठंडी इतना था कि जो मिट्टी हमरे पैर रखने से उठता था वह भी हमरी टांगों को ठंडा लगता था। खैर, आखिर हम उसके घर में पहुंचा। उस छोकरी का—क्या बोलता है उसको ? हां—भाबी, भाबी दालान में बैठा खाना पकाता था। हमरे को देखकर वह कश्मीरी भाषा में बहुत कुछ बोला। किन्तु छोकरी उत्तर में कुछ बोला नहीं, केवल हामरी ओर देखकर मुस्किराता रहा। हमने माई को बोला—'माई, हम भूखा है। कलकत्ते से आया है। बहिन ने हामरा बात सुना है। तुम हामरी अम्मां के समान है। हम शकाल में चला जायेगा।' वह चुप हो गया। हम एक कोने में सिमटकर बैठ गया।

इतनी देर में छोकरी का दोनों भाई भी आ गया, खूब ऊंचा लंबा था वह। हम सोचा कि यदि इस समय इनको सन्तुष्ट करेगा नहीं, हम तो ये मुसल्मान लोग आज भात के स्थान पर हामरा को खायेगा। हम बहुत डर गया था भाई। वह हमें देखकर बहुत हैरान हुआ। और माई से झपटने लगा। माई ने बताया कि छोकरी हमें लाया। फिर वह बहुत जोर से छोकरी को गालियां देने लगा। अब हम सोचा कि काम बिल्कुल खराब हो गया। किन्तु एक दम से हमने सुना कि छोकरी हिन्दुस्तानी में उनको कह रहा है—'हम जिसको मर्जी होगा इधर लायेगा। हम बिलकुल ठीक किया है।' हमें उसका यह बात बहुत अच्छा लगा। हमरा अपना पढ़ा लिखा छोकरी में तो कुछ होता नहीं है।

'दोनों भाई हामरी तरफ आया। अब हामरा में भी कुछ जान आ गया था। हम बोला—'देखो लाला, बैठो, इधर हामरे पास बैठो।

सुनो हामरा बात। वह उधर चन्द्रमा देखता है कि नहीं। वह हामरे वास्ते भी है कि केवल तुमरा वास्ते है? और देखो, यह हामरा हाथ है, तुमरा भी वैसा ही हाथ है। है कि नहीं? हामरे अन्दर भी खून है, तुमरे अन्दर भी खून है, है कि नहीं?'

'अन्त में वह बोला—'है। हि हि हि हि हि हि।'

इस दौरान में नलिनीकान्त ने नौनीत का हाथ पकड़ लिया था वह अब छोड़ दिया।

'फिर हम बोला—'खुदा एक है। तुम उसको अल्लाह बोलता है। हम उसको राम बोलता है। चीज़ तो दोनों एक है। हम बहुत दूर कलकत्ता से आया है और इधर हमको रात हो गया है। बहिन हमको मेहरबानी से इधर लाया है तो इसमें क्या नुकसान है? शकाल में हम चला जायेगा।'

'गांव का लोग एकदम सरल होता है। उसने हामरी दलील का कोई जवाब नहीं दिया। कहने लगा—'अच्छा, तुम भात खायेगा या रोटी?'

'इस पर हमें बहुत चिन्ता हुआ। मुसलमान के घर का भात खाने को हमारा जी नहीं करता था, किन्तु हम सोचा कि इतना बड़ा लेकचर दिया है, अब हम कैसे इन्कार कर सकता है। सो लड़की हामरे वास्ते रोटी लाया। हमने खा लिया। हमने उसको मिटाई दिया, उसने खा लिया।

'खाने के बाद भाई लोग सोया नहीं। हमने सोचा था कि उसी

से एक आध कम्बल मांग कर दालान में पड़ा रहेगा, किन्तु हमें मालूम हुआ कि वह रात को ग्राट पर जाता है। आपने ग्राट देखा होगा ?

'नहीं'—नौनीत बोला।

'ग्राट एक प्रकार का चक्की होता है जिसमें पानी के जोर से चक्की पीसता है। अरे बाप रे, बड़ा शोर होता है उसका। भाई लोग बोला—'चलो तुम भी ग्राट पर चलो।' हमने बोला—'अच्छा।' वह आगे चला हम पीछे। दरवाजे के पास पहुँचा तो छोकरी हमारे पास धीरे आकर बोला—'मत जाओ।'

'इसके बाद हामरा जाने का एकदम मर्जी नहीं था, किन्तु विवश था, हम घबराहट से कुछ बोला नहीं, आगे बढ़ा।'

'ग्राट के एक कोने में हमको लेट जाने का आदेश हुआ। किन्तु वहाँ का शोर, उछल कर आता हुआ आटे का पौडर, और साथ में छोकरी का सन्देश, हमको रह रहकर सताता था। हमने सोचा कि शायद भाई लोग का इरादा बुरा हो इसीलिए लड़की ने हमें अनुरोध किया है। हामरे पास एक घड़ी था और कुछ रुपया था, वह हमने धोती में ठीक से बांध लिया और फिर सोने की चेष्टा की। लेकिन नींद नहीं था। 'मत जाओ', 'मत जाओ' यही शब्द दिमाग में आता था। आखिर, हम उठा, भाई लोग व्यस्त था, और चुपचाप बाहर चन्द्रमा के प्रकाश में टहलने लगा।

'आप तो कितनी बार काश्मीर गया है। आपके सामने रात की बसूरती का वर्णन करना कुछ फायदा नहीं है। किन्तु ऐसा करने से हामरी तबीयत को कुछ चैन मिलता है। ओह! ऐसा सुन्दर रात्रि

हमने न कभी देखा और न कभी फिर देखना नसीब होगा। वह नीरवता, वह चिनार, वह पहाड़ों का लाइन, वह विकीर्ण जंगली फूल, वह मानस बल, स्वर्ग था, स्वर्ग था। किन्तु उस समय हम उसकी सुन्दरता को देख नहीं रहा था, क्यों कि हामरा मन अशान्त था। अशनात मन से चांद को देखने वाला लोग उसके सौन्दर्य का अनुभव कैसे कर सकता है? हम विमूढ़ होकर उसी स्थान की ओर चला जिधर वह छोकरी हमको पहले मिला था। क्यों? ईश्वर जाने। उसके वहाँ होने का कोई आशा नहीं था, किन्तु उस अपरिचित देश में केवल वही एक परिचित स्थान था, शायद इस लिए।

'जब हम उधर पहुँचा तो देखा कि लड़की फिर अपने काम में लगा है। हमें बहुत आनन्द हुआ। फड़कते हुए दिल को साथ में लेकर हम वहीं पर जाके बैठ गया। वह हमें देखने पर खूब हंसा।

उसका मुख चन्द्रमा से भी बढ़ कर चमकता था, क्यों कि चन्द्रमा तो पीला हाता है गुलाबी और सफ़ेद तो होता नहीं है।

'हमने पूछा—'तुम क्यों बोला था मत जाओ?' इस पर वह बच्चे की तरह मुस्किराया और अपना कमीज की बांह चढ़ा कर हामरे पास आया। हम भी उठा। उसने अपनी गोरी बांह के साथ हामरा बांह पकड़ा और हमें पास के एक टीले के पीछे, जहाँ एक दम अन्धकार था, ले गया। एक चिनार की ओट में हम दोनों टीले के साथ टिककर साथ-साथ बैठ गया। वह बोला—'तुम बहुत अच्छा है।'

'यदि कोई शहर का स्त्री हामरे साथ ऐसा बोलता तो हम निश्चय करता कि वह बाज़ारी है, किन्तु इस छोकरी की आंखों में सरलता, सुकुमारता और न जाने क्या था। हमने उसके कन्धे पर हाथ रख कर

प्यार से कहा—'तुम भी बहुत अच्छा है।' नौनीत भाई, तुमरी राष्ट्र-भाषा का हम दोनों ने खूब चमत्कार-पूर्वक प्रयोग किया।

'इतना बात करने के पश्चात् वह एक दम से ठंडा सा हो गया—हो गयी। अब वह हंसती नहीं थी। कुछ बोलती नहीं थी। हमने उसके सिर के नीचे हाथ डाल कर उसको अपने साथ लगा लिया और बहुत प्यार किया। उसकी आंखों को बड़ी कोमलता के साथ चूमा, उसके कपोल पर अपना कपोल लगाया, हामरे को ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ग की कोई अप्सरा किसी राक्षस की कैद से छूट कर हमरी शरण में आई है।

'वह हमसे बोला—बोली,—'तुम कलकत्ते से आया है ? उधर क्या है ?

'हमने उसे सब चीज का अहिस्ता-अहिस्ता बड़े प्यार के साथ वर्णन किया। रेलगाड़ी की बाबत सुनकर वह बहुत विहल हुआ, आप कल्पना कर सकता नहीं है। एक बार वह हमारी बात सुनती-सुनती हमारी छाती के साथ मुंह सटाकर रोने लगी—'हमको अपना साथ ले जाओ, हम इधर नहीं रहेगी।'

'हम बड़ी खुशी के साथ बोला—'अवश्य, हम जरूर ले जायेगा।' हमको उसने बताया कि उसका माँ बाप मर चुका था। उसका भाई सगा भाई नहीं था, और वह उसे पीटता था, और रात को भी काम करवाता था। उसका भाबी उसको खाने को भी नहीं देता था।

'हम उसको बोला—'चलो, अभी चलो, हम तुमको ले जायेगा।'

ईश्वर साक्षी है, हमको उसके साथ कामवासना नहीं था, ईश्वर जाने क्या था। यदि प्रेम नहीं था तो वासना भी नहीं था।

'लेकिन वह बोला—'अभी नहीं। खेत में शायद और लोग काम करता होगा। वह देख लेगा।' ठीक तो था। भविष्य के आनन्द की खातिर छोकरी वर्तमान के आनन्द को छोड़ना नहीं चाहती थी।

'समय गुज़रता गया। सर्दी काफ़ी था इसलिए हम दोनों एक दूसरे को खूब जकड़ कर लेटा रहा। कुछ देर के बाद वह सो गया। हम सोचता रहा।

'जब चन्द्रमा फीका पड़ने लगा और दिन का कुरूप आक्षेप दिखाई दिया तो हमने उसे जगाया और कहा—'चलो।' वह उठा और श्रद्धा भरी दृष्टि के साथ हम पर मुस्किराया। ओह, हम भूलने नहीं सकता। फिर एक दूसरे का हाथ लेकर हम तेजी से चल पड़े।

'किन्तु दिन जब कुछ और ऊपर उठा तो हमने सोचा कि हम यह क्या कर रहा है? एक परदेसी होकर एक अनजान छोकरी को भगा ले जा रहा है। हमें कौन भगाने देगा? तरह तरह की शंका उठी, किन्तु हम उस समय सोचा नहीं। हम उसका हाथ पकड़कर चलता गया। वह छोकरी हमारे लिए आकाश-वाणी था। आकाश-वाणी को त्याग कर जो चलता बने, वह इन्सान नहीं है....

'मेरा आँख बन्द था, और मन स्थिर था। कोई हामरी मेहर (उसका नाम मेहर था, किन्तु हम सोचा है कि यदि वह हामरे साथ आता तो हम उसका नाम अरुन्धती रखता) को छीन नहीं सकता था।

'किन्तु जब हम एक दो मील चल गया तो दिन खूब चढ़ गया और दो तीन काश्मीरी लोग हमको दूर से गाता हुआ आता दिखाई दिया। बस, हम जानता नहीं छोकरी को क्या हुआ। एकदम हाथ छुड़ाकर पीछे ठहर गया। हामरी तरफ़ सजल आंखों से देखता हुआ बोला—'न।'

'इसके बाद उसने अपने कान से एक छोटा सा चांदी का बाली उतारकर हामरे हाथ में दिया। फिर हामरा हाथ को चूमा। हमने देखा कि समय आ गया है। अब वाद-विवाद का कुछ फ़ायदा नहीं है। हमने अपना घड़ी उसे दे दिया, जी करता था जिगर काटकर उसे देऊं, उस सौन्दर्यमूर्त्ति को। एक क्षण में वह पूरी रफ़तार से वापस दौड़ गया।

'किन्तु हामरे को अफ़सोस नहीं है। वह उसी देश का चीज था, वह इधर आकर जीने नहीं सकता था। किस्मत पर हामरा हाथ नहीं है, किस्मत पर किसी का हाथ नहीं है।'

नौनीत को चुपचाप देखकर नलिनीकान्त धीरे से हंसा और बोला—'बस यही है, इतना ही है। काश्मीर हमें भूल नहीं सकता है। दिल से हम काश्मीरी हो चुका है। हामरा दिल वहीं रहता है। किन्तु अब हम उधर जायेगा नहीं।

कुछ क्षण और टिककर बाबू नलिनीकान्त ने अपना छाता सम्हाला और चल दिये। वर्षा बदस्तूर हो रही थी।

उनके निकलते ही नौनीत ने टाइमपीस की ओर देखा। चार बज चुके थे। दो एक व्यक्तियों से मिलने का समय टल चुका था।

नौनीत शीशे के सामने गया और अपनी प्रतिछवि को देखता हुआ ईश्वर से पूछने लगा—'क्या मेरे चेहरे पर कोई निमन्त्रण पत्र लिखा धरा है ? क्या इस कहानी की ज़रूरत बाकी थी ?'

अपनी विचित्र भवितव्यता से प्रेरित होकर उसने पुस्तकों को फिर से समेटना शुरू कर दिया ।

तलिस्म

कालेज की ग्राउन्ड पर फुटबाल मैच के आखिरी मिनट थे। बाहर से आये हुए खिलाड़ी अपने सिर से एक गोल का कलंक उतार फेंकने की बेतहाशा कोशिश कर रहे थे। दर्शक लड़के-लड़कियों का हर तरफ़ शोर-गुल हो रहा था। उत्तेजना चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। ऐन ऐसे वक्त पर कालेज का नया प्रोफ़ेसर हेमन्तराय, बिल्कुल ठप्प हो गया, यह बात साथवालों को बड़ा हैरान कर रही थी। जिस समय जोश का कोई विशेष अवसर न था, हेमन्तराय की आवाज़ लाउडस्पीकर की तरह चारों तरफ़ पहुंच रही थी। दाएं-बाएं छोटे-बड़े सभी को उकसा रही थी। लेकिन यकायक यह निष्ठुरता क्यों? लोगों को इसकी छानबीन करने की फ़ुर्सत नहीं थी।

दरअसल बात यह हुई कि एक बार जब फुटबाल ऊपर उठा तो नवयुवक प्रोफ़ेसर की नज़र उसके साथ गई। लेकिन लौटते वक्त

फुटबाल अकेला लौटा। प्रोफ़ेसर की नज़र आकाश ही में रह गई। वहां बरसात के बादल बड़ी गहराई के साथ छाये हुए थे और उन्हें अस्ताचल का सूर्य जाते जाते अपना सोना, अपने सिन्दूर के खज़ाने, और अपनी रत्नजटित इन्द्रधनुष की माला भेंट कर रहा था। ऐसी लूट बादलों को आगे कभी नसीब न हुई थी।

लेकिन कुदरत में भी पक्षपात की कमी तो नहीं ना। जहां अगले हिस्से के बादल अपने ऐश्वर्य के भार से इतने लदे हुए थे कि सोने की एक सलाख उनके हाथों से नीचे फिसल रही थी, वहां क्षितिज पर के पिछले बादल भिखमंगों की तरह मैले कुचैले चीथड़े पहने खड़े थे। उनकी हालत देखकर हेमन्तराय को दर्द हुआ, किन्तु अकस्मात् एक चमत्कार-पूर्ण घटना हुई। उन निर्धनों के ऐन पीछे से पूर्णिमा का पूरा चांद जैसे एक छलांग में ही उछल आया, और पल भर में उनकी झोली ऐसे शुभ्र रत्नों से भर दी कि सूरज की देन मात हो गई।

'महाक्रान्ति, महाक्रान्ति'—भावुक प्रोफ़ेसर बेताब होकर उठ बैठा और मैच समाप्त होने से पहले ही अपने कमरे की तरफ़ तेज़ी से चल पड़ा। कालेज की टीम जीत गई। दर्शकों व खिलाड़ियों की आवाज़ें उसे दूर से आती हुई सुनाई दीं—

'हिप हिप हुर्रे—हिप हिप हुर्रे।'

लेकिन हेमन्त, जिसकी तीव्र कल्पना हमेशा शगुन और इशारे खोजती रहती थी, अपनी मुट्ठियां बांधकर गुनगुनाता जा रहा था—

'महाक्रान्ति हुर्रे, सौंदर्य हुर्रे, संसार का उज्ज्वल भविष्य हुर्रे।'

खलबली में उसने दरवाज़े को धक्का दिया और कमरे के अन्दर पहुंचकर चिटखनी चढ़ा दी। उसी तैश में एक कापी खोली, सिगरेट जलाया और मेज़ के आगे बैठकर कल्पना के बराबर अंश छन्द के तराज़ू पर तौलने लगा।

कविता कुछ प्रवाहित हुई, कुछ रुकी, कुछ सोई, कुछ जागी, और उसकी यह भावभंगियां कवि की शारीरिक हरकतों में छलकने लगीं। कभी वह आकाश की वर्ण वल्लरियों की याद को ताज़ा करता हुआ व्यग्रता से छत की ओर देखने लगता, और कभी कमरे में इस ढंग से हाथ हिला हिलाकर टहलने लगता जैसे किसी अदृश्य तानो की 'तांतें' सुलझा रहा हो। एक बार खुली हुई खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया और मन्त्र मुग्ध सा होकर सामने के एक पेड़ की तरफ़ ताकने लगा, जिसमें हज़ारों चिड़ियां अपनी सांयकालीन उपासना कर रही थीं।

अकस्मात् उसके कल्पना-क्षेत्र के किसी रीक्त स्थान की पूर्ति करती हुई सी एक भिखारिन युवती उसके सामने आ ठहरी। उसका काला वक्षःस्थल नंगा था। बग़ल से सटा हुआ एक शिशु एक स्तन से दूध पी रहा था और दूसरे से खेल रहा था। साथ में स्त्री का बांया हाथ थामे एक और बालक खड़ा था। हेमन्त की सौन्दर्य क्षुधित कल्पना ने युवती का एक एक अंग टटोला, देखा कि स्तन बेल फल की तरह गोल हैं, उसका शरीर लम्बा और सुपुष्ट है, उसके बाल मिटैले और रूखे होने पर भी बुरे नहीं लगते। निर्धनता की वह एक अभिमानपूर्ण प्रतिनिधि है। और फिर स्त्री के शरीर से वह अक्षर उमड़कर आने लगे, जिन्होंने महाक्रान्ति की दुन्दुभि, उस कविता को पूरित करना था।

स्त्री ने प्रोफ़ेसर को इस प्रकार अपनी तरफ़ घूरते हुए देखकर अपनी मैली धोती छाती पर सरका ली। और दायां हाथ पसारकर दीन

आवाज़ में विनय करने लगी। उसकी मिसाल पाकर बालक भी कुछ गुनगुनाने लग पड़ा।

यदि वह किसी और समय आती तो भीख देने से पहले प्रोफ़ेसर मन ही मन दलीलें उड़ाता। भीख के मामले में वह अभी तक कुछ फ़ैसला नहीं कर सका। कभी सोचता है, हरगिज़ नहीं देनी चाहिये, इससे समाज की सम्पत्ति नष्ट होती है। फ़ायदा कुछ नहीं होता। फिर सोचता है, मेरे छः आने रोज़ के सिगरेट फूंक डालने से समाज को क्या लाभ पहुँचता है? यदि भीख का पेशा बुरा है तो समाज इस सवाल को हल करने पर कटिबद्ध क्यों नहीं होता? क्या समाज को उपेक्षा का हल यही है कि बेरोज़गार असहाय लोग जल्दी से जल्दी भूखे मार दिये जायें? न ही उसने सिगरेट छोड़कर धर्मार्थ शुरू किया है और न भिखारियों पर किवाड़ बन्द करने का अभ्यास किया है। उससे भीख पा लेना काफ़ी हद तक भिखारी की ज़िद और प्रोफेसर के 'मूड' पर निर्भर है।

लेकिन आज प्रोफ़ेसर के मन में आरोध-विरोध पैदा नहीं हुआ। पहले उसने कोट में से एक दुवन्नी निकाली, फिर उसे एक भद्दी आवाज़ वाले रुपए की याद आई जो मेज़ के दराज़ में पड़ा था। दवन्नी की बजाए यह रुपया ही क्यों न दे दिया जाय? ग़रीबों की खोटा रुपया चला लेने की क्षमता पर हेमन्त को विश्वास था। खोटे रुपये के आखिर काम आ जाने की सम्भावना पर खुश हो वह किवाड़ खोल कर स्वयं बाहर गया और रुपया स्त्री की हथेली में देकर उल्टे क़दमों वापस लौट आया। फ़र्श पर फेंकने से उसकी असलियत बेवक्त ज़ाहिर हो जाती। कमरे में आकर वह दीवार की आड़ में खड़ा हो गया ताकि स्त्री की चकाचौंध का प्रत्यक्ष साक्षी न होना पड़े। लेकिन छिपे-छिपे उसने देखा कि स्त्री मूर्त्ति की तरह खड़ी कितनी ही देर तक कभी रुपए की तरफ़ और कभी खिड़की की तरफ़ देखती रही। उसके चेहरे पर

उल्लास के आंकड़े न थे, बल्कि एक गम्भीर सोच सा व्याप्त था, जिसे वह समझ न सका।

और भिखारिन स्वयं भी न समझ सकी कि उसके साथ क्या बीत रही है। रुपए के हथेली पर पड़ते ही उसका स्वभाव से गुदगुदा हाथ पसीने से भीग गया। सारा दिन इधर उधर भटकने पर दो पैसे भी न बना सकी थी। और अब हाथ उठाते ही सही सलामत चांदी। उसके लिए सोचना या कुछ कहना मुश्किल हो गया और यों ही वापस लौट पड़ी। हेमन्त को उसका लौटना गर्व पूर्ण सा दिखाई दिया, जैसे स्त्री की नज़र में उसने रुपया देकर अपनी समझदारी का परिचय दिया हो, दयालुता का नहीं।

रुपया मुट्ठी में कसकर भिखारिन शहर की तरफ़ चल पड़ी। उसे अपने हाथ में से अनूठे कम्पन शरीर में फैलते प्रतीत हुए, जैसे कहीं उसका हाथ किसी सुन्दर और बलिष्ठ पुरुष ने थाम लिया हो और उससे प्रणय याचना कर रहा हो। उसी तरह जिस तरह की तस्वीर हलवाई भुल्लड़ की दुकान पर टंगी हुई थी।

भिखारिन के लिए यह रुपया पा जाना उतनी ही रोमांचकारक बात थी जितनी कि पंचानन के लिए होती। अगर कोई सड़क पर जाते जाते उसे यह ख़बर दे देता कि उसकी पत्नी घर वापस आ गई है और मुस्कराती हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही है। क्या यह संभव है कि वह मारे खुशी के सड़क पर चिल्लाना न शुरू कर देता ? मुमकिन है बेचारा पागल ही हो जाता। पंचानन भिखारिन के भूतपूर्व स्वामी का नाम था। पंचानन ने उसे ज़मानत रख कर एक माली से पचास रुपए लिये थे।

पंचानन ने रकम चुकता कर देने की बड़ी कोशिश की थी, लेकिन सफल न हुआ। और आखिर वह दिन भी आया जब माली ने स्कूल की ग्राउन्ड में ही उसे अपने घर की रानी बनाने के लिए घसीटना शुरू कर दिया। पंचानन भी चावल की मिल में काम निबटा कर लौट रहा था। उसने उसका दूसरा बाजू पकड़ लिया। दोनों में वह खींचा-तानी हुई कि बेचारी के कन्धे ही उखड़ गये होते। लेकिन माली के पक्ष में सत्य था, इस लिए जीत उसी की हुई।

पंचानन उसके बिछोह को न सह सका, लेकिन वह अपने बच्चे की खातिर बच रही थी। पंचानन मर गया। और माली अपनी पत्नी से मिलने देश गया और लौट कर नहीं आया।

भिखारिन ने सोचा यदि उन दिनों पंचानन को, जिन दिनों वह चिन्ता में डूबा हुआ हमेशा सिर झुका कर चलता था, इसी तरह किसी ने पचास रुपये दे दिये होते तो वह क्या करता ? उससे चुप न रहा जाता।

लेकिन वह औरत ज़ात थी। उसके मानसिक उद्वेग को यही विमुक्ति मिली कि वह थोड़ा सा उछली और बच्चे के मुंह को स्तन में लगा दबोचा। उसकी नन्हीं सी सांस रुक गई और वह रो पड़ा।

कुछ वर्षा हुई और तदनन्तर अंधेरा छाने लगा। लेकिन कभी-कभी पूर्णिमा का चांद बादलों में से झांक लेता और उसे मुस्कराकर कहता—'देख, यह रुपया भी तेरा लाड़ला है। इसे सम्हालकर रखना।' यह सुनकर वह ठहर जाती और हथेली खोलकर चांदी को देखती रहती जब तक कि चांद फिर छिप न जाता।

जब भिखारिन भुल्लड़ हलवाई की दूकान के सामने से गुज़री तो उससे न रहा गया। भुल्लड़ के तमाम पुराने कटाक्ष और घुड़कियां उसके मन में गूँजने लगे, और उसने सोचा कि अगर भुल्लड़ को उसकी ज़बानदराज़ी का मज़ा चखा दिया जाय और स्वयं कुछ गरमागरम पूरियां चख ली जायं तो कैसा रहे ?

कुछ देर वह बिजली के खम्बे के साथ टिककर अनमनी आंखों से दूकान को ताकती रही। फिर जी पक्का कर निकट आई और बोली।

'भुल्लड़, ज़रा आध सेर पूरी तौल दो तो।'

भुल्लड़ भन्ना गया। अपनी चिकनी धोती का लड़ तौंद में ऐंठता हुआ चिल्लाया—

'हट यहां से हरामज़ादी, भुल्लड़ की बच्ची। आध सेर पूरी तौल दो इसको। वाईसरानी तो यही ठहरी।'

इसके उत्तर में भिखारिन ने, उत्साह के साथ जो बहुत हद तक छिछोरेपन पर झुकता था, रुपया दिखाया और कहा—

'पैसे दूँगी।'

भिखारिन के हाथ में रुपया देखकर भुल्लड़ की जीवात्मा और भी ज़ख़्मी हो गई, और वह तरह-तरह की अनुचित तोहमतें लगाने लगा। लेकिन उसकी दूकान पर उस समय कुछ कालिज के विद्यार्थी खड़े थे, उन्होंने उसे मना किया और समझाया कि जो भी ग्राहक

दूकान पर सौदा लेने आये वह सम्मान के योग्य है। चाहे वह चमार हो, चाहे ब्राह्मण और चाहे निर्धन या धनी। विशेषकर स्त्रियों से तो बहुत ही विनम्र बर्ताव होना चाहिये। इसके समर्थन में उन्होंने अंग्रेज़ दूकानदारों की मिसालें दीं।

अक्सर दलीलें भुल्लड़ की समझ में न आईं। बोला—

'साहब, आप इसे जानते नहीं।' फिर उसने अपनी चिकनी धोती का लड़ तोंद में ऐंठते हुए दुष्टा की सारी रामकहानी सुना दी। किन्तु जब नवयुवक इससे भी विचलित नहीं हुए तो उसने स्थायी ग्राहकों का मुंह रखने की ख़ातिर कहा—'अच्छा ला पैसे, देता हूँ पूरी।'

भिखारिन पहले रुपया न देना चाहती थी, लेकिन फिर उसने सोचा कि इतना बड़ा सेठ क्यों बेईमानी करने लगा।

'दो आने का कलाकन्द भी दे देना।' उसने आदेश दिया।

लेकिन उसे क्या मालूम था कि रुपए का पत्थर से भी रिश्ता होता है! हलवाई ने रुपया लेकर पत्थर पर दो बार पटका और उसे सड़क पर फेंकते हुए नौजवानों की ओर प्रवृत्त हुआ—'देखा साहब, चुड़ैल धोखा देने आई थी। सारा बाज़ार इसकी करतूतों से बेज़ार है। आप इस ज़ात के लोगों को जानते नहीं।'

इसके बाद उसने स्वतन्त्र होकर स्त्री के प्रति अश्लील शब्दों का एक दरिया बहा दिया, जिसका रस लेने और भी कई रसिक लोग ठहर गये। कालेज के विद्यार्थी साइकिलें उठाकर चल दिये।

भिखारिन ने रुपया उठा लिया और ढीठ सी बनकर बड़े बाज़ार की ओर चल पड़ी। उसने तीन चार और दुकानों पर सौदा ख़रीदने की कोशिश की, लेकिन दुकानदार रुपए वाली की शकल देखकर पहचान जाते कि रुपया ठीक नहीं है। हताश होकर एक बरामदे में जा बैठी। दो मिनट बाद वहां से भी उठा दी गई। फिर किसी और स्थान का आश्रय लिया, लेकिन वहां से भी घुड़कियां खाती हुई वापस सड़क पर आ निकली। कविता के छन्द, और संगीत की लय में भी इसी प्रकार के उतार चढ़ाव होते हैं।

इन्हीं में काव्य लहरी को बांधता हुआ उस अनुपम सायंकाल में प्रोफ़ेसर हेमन्तराय अलौकिक सुख का अनुभव कर रहा था। एक-एक शब्द में उसे संसार के उस हेमयुग का प्रत्यक्ष हो रहा था जिसमें 'वर्ग द्वन्द्व' और निर्बलों का शोषण समाप्त हो चुका होगा। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति दूसरी जातियों के शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उद्धार की ओर रजूह होंगी, न कि उनके विनाश की ओर। देशीयता और धर्म के नाम पर संग्राम और कलह अतीत की वस्तु हो चुके होंगे। और व्यक्तिगत जीवन। ओ हो, कितना स्वच्छन्द होगा, कितना सुमधुर। यह परस्पर विश्वास का युग होगा न कि शक ओ शिकायत का। ज्ञान और विज्ञान तमाम अन्ध विश्वास का अन्त कर देंगे। नारी विश्व समाज में अपना ईप्सित स्थान ग्रहण करेगी। दाम्पत्य जीवन का एक मात्र आधार स्तम्भ प्रणय होगा। न कि कर्त्तव्य।........

'क्या यह सब सम्भव नहीं ! हां, यह सब सम्भव है। इस युग की कल्पना सभी विशिष्ट कवियों एवं महात्माओं ने की। लेकिन मानव समाज के पास उस समय पर्याप्त ज्ञान नहीं था, पर्याप्त वैज्ञानिक शक्ति न थी कि सकल संसार को किसी वैश्विक न्याय विधान के अधीन कर

सकें। अब हममें शक्ति है। गगन के जिस नक्षत्र के सहारे हमें आगे बढ़ना है, इस अंधेरी रात में स्पष्ट दिखाई दे रहा है।....'

आखिर कविता समाप्त हुई और हेमन्तराय थककर एक आराम कुरसी में लेट गया। उसकी आंखों के सामने धुंधलाहट सी छा रही थी, और ऐसा प्रतीत होता था कि उसके प्रत्येक अंग का ख़ून सिर ही में दौरा करने लगा हो। कुछ देर के लिए उसने आंखें बन्द कर लीं।

भिखारिन ने इस रुपए के अलावा दिन में केवल एक पैसा बनाया था। अब इससे उसने मुट्ठी भर चने ख़रीदे और किसी तरह अपने बड़े लड़के की भूख मिटाई। फिर नगर से बाहर निकल पड़ी, ताकि ताल के निकट भिखारियों की बस्ती में जाकर अपने पेट का भी कुछ प्रबन्ध करे। उसके मन में निराशा नहीं, वेदना थी, क्रोध था। एक असह्य पीड़ा—जिसका विग्रह किसी पुरुष की छाती से सट कर रोने से ही हो सकता था। और तीन साल हुए जब पंचानन मर चुका था।

प्रोफ़ेसर हेमन्तराय जब कुर्सी से उठा तो आकाश में बादल का नाम निशान नहीं था। चांद की ज्योत्स्ना निखरकर फैली हुई थी। लेकिन इस अवकाश में हेमन्त के मन का वह उल्लास और आवेग जाता रहा था। उसका स्थान फिर उसी सूनेपन ने ले लिया था जो अब उसके जीवन का एक स्थायी अंग बन चुका था। कविता बनी और अच्छी बनी इसका उसे सन्तोष था, लेकिन वह दिव्य लोक जिसमें वह कुछ क्षणों के लिए जा बसा था, अब गैस के गुब्बारे की तरह उड़ गया था। उसके स्थान पर हेमन्त के आगे एक काग़ज़ का टुकड़ा धरा पड़ा था, जिसे हाथ लगाने से भी तबीयत कतराती

थी। उस टुकड़े की उपयोगिता अब इतनी ही रह गई थी कि उसे कल किसी पत्रिका में भेज दिया जाय ताकि कुछ विद्वान लोग उसकी क्षमताओं व त्रुटियों पर विचार-विमर्श कर सकें।

उसे ऐसा लगा जैसे चन्द्रमा उसे कह रहा हो, 'भाई, लाखों साल के तजुरबे के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान के आगे भविष्य एक बड़ी तुच्छ वस्तु है।' उसे प्रतीत हुआ कि इस समय उसके जीवन की अनेक बाधाएं और अपूर्तियां उसे डस रही हैं कि उसके हृदयस्थल में एक अथाह शून्य है जिसे भविष्य का कोई अवलोकन दूर नहीं कर सकता।

किसी प्रकार इस बेचैनी का विच्छेद करने की इच्छा से हेमन्तराय ने कोट पहना और साइकिल पर सवार होकर देहात में निकल गया। होस्टल से मील भर की दूरी पर एक लम्बा चौड़ा तालाब था, जिसमें कमल खिलते थे, और जिसके इर्द गिर्द जंगल ही जंगल था। हेमन्त तेज़ी से साइकिल चलाता हुआ तालाब के समीप पहुँचा। साइकिल को एक पेड़ के साथ टिकाकर स्वयं एक टीले पर जा बैठा।

न जाने कितनी देर बैठा होगा कि उसे जीर्ण पत्तों पर किसी के कदमों की आवाज़ सुनाई दी। उसने देखा कि एक स्त्री दो सोये हुए बच्चों को उठाये पगडंडी के रास्ते कहीं जा रही है। कुछ क्षण उसने स्त्री की तरफ़ कौतूहल भरी दृष्टि से देखा और फिर अपने विचारों में तल्लीन हो गया। लेकिन स्त्री जङ्गल की ओर जाने के बजाय उसी की तरफ़ बढ़ती चली आई। उसके नज़दीक आने पर हेमन्त को याद आया कि यह वही स्त्री थी जिसे उसने वह खोटा रुपया दिया था।

भिखारिन उसके सिरहाने आकर खड़ी हो गई, और कुपित दानवी

की तरह उसे घूरने लगी। हेमन्त उसकी मुद्रा को देखकर ठिठक गया, लेकिन हिम्मत करके बोला।

'क्या है ?'

इसके जवाब में स्त्री ने हाथ उठाकर सहसा वह रुपया हेमन्त के मुंह पर दे मारा। हेमन्त के गाल पर चोट लगी, लेकिन वह पल भर में परिस्थिति समझ गया और चुप खड़ा रहा। स्त्री भी कुछ भयभीत सी होकर वापस जाने लगी। लेकिन हेमन्त ने आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया और करुण स्वर में बोला—'भूखी हो ?' मन ही मन वह खुश था कि उसे मानव चरित्र को स्टडी करने का एक सुअवसर मिल रहा है।

'हां।' स्त्री ने सजल नेत्रों से सिर हिलाया।

'बच्चे भी ?'

'हां।'

'ओह।'

फिर अपने आपको सम्हालते हुए हेमन्त ने और भी द्रवित शब्दों में कहा।

'देखो रानी, मुझे ज़रा भी ख़्याल नहीं था कि रुपया खोटा है। सच जानों मैंने जान बूझकर तुम्हें नहीं दिया। बस, तुम दो मिनट यहां इन्तज़ार करो। ईश्वर की कसम मैं कुछ खाने पीने की चीज़ें

लेकर दस मिनट में लौटता हूँ। मैंने भी कुछ नहीं खाया। इकट्ठे खायेंगे, अच्छा ? देखो, रोओ मत।'

फिर उसे और अधिक आश्वासन देने के लिए हेमन्त ने कोट में से कुछ पैसे निकाल लिये और कोट स्त्री के हवाले करते हुए कहा—

'तुम इसका ख़्याल रखना।' जैसे वह कोई चिर परिचिता हो।

भिखारिन के जवाब का इन्तज़ार न करके वह साइकिल पर शहर की तरफ़ रवाना हो गया।

भिखारिन ने, न जाने क्यों, फिर विश्वास कर लिया। हालांकि कोट में एक अच्छी घड़ी थी, और दस रुपये थे।

थोड़ी देर में हेमन्त लौटा। उसके हाथ में एक बड़ी सी पटारी थी।

पिटारी में पूरियां थीं, मिठाई थी, समोसे थे, सेब और दो एक टीन के डिब्बे थे। स्त्री अनमनी सी होकर इन चीज़ों को देखने लगी, लेकिन छूने की हिम्मत उसमें न थी। हेमन्त ने साहस किया और मिठाई का एक टुकड़ा उठा कर स्वयं उसके मुंह में रख दिया। भिखारिन ने एतराज़ नहीं किया। वह सुन्दर न थी, लेकिन उसका शरीर सन्तोषप्रद था, और उसकी आंखों में एक प्रकार की सरलता थी, विश्वास था। यह टूटी फूटी कोमलता हेमन्त को एक पुरानी, और सुन्दरतर कोमलता की याद दिला रही थी, जिससे बिछुड़े हुए अब हेमन्त को कई बरस हो चले थे।

शनैः शनैः बात गंभीर होती गई....

इस प्रकार भिखारिन के तीसरे शिशु का आगमन हुआ।

पालिशवाला

धूप में जलती हुई प्लैटफ़ार्म की कंकड़ी पर गिलहरी पत्ता चबाती हुई इधर से उधर रेंग रही थी। कुली ने मेरा बिस्तर उसकी पीठ पर फेंका, और वह भार उठाने पर रज़ामन्द हुई या नहीं यह न देखकर, दूसरी तरफ़ एक 'लौन्डे' का गीत सुनने चला गया। पास ही एक शहतूत का पेड़ था जिसकी कमर पर ईंटों का पेटीकोट कसा हुआ था। मैं पेटीकोट पर बैठकर उसे एड़ियों से ठुकराता हुआ सेकन्ड गिनने लगा। सौ ठोकरों का एक मिनट, डेढ़ हज़ार ठोकरों के पन्द्रह मिनट। बस फिर गाड़ी आ जायेगी।

पेटीकोट के मध्य में, पेड़ की कमर से पीठ टिकाकर, एक नाई एक लाला की मूँछों की जड़ में उंगलियां देकर, उसके होंठों को रद्दी कागज़ की तरह मरोड़कर, दाढ़ी बना रहा था। तिस पर भी लाला लगातार शीशा देख रहे थे, जैसे दुनिया के बस एक माशूक़ हों।

कमर के दूसरे पक्ष से पीठ टिकाकर, फटा हुआ काला कोट पहने एक बूढ़ा, जिसका दायां हाथ लकवे की वजह से फ़व्वारे की तरह झिलमिल करता था, बायें हाथ से टोपी उतार कर, दायें हाथ से अपने पसीने से तर गंजे सिर को खुजलाने की चेष्टा कर रहा था। शायद, मेरी तरह, समय काटने के लिये। वरना बायें हाथ से खुजला लेता।

इतने में वही बूट पालिश करने वाला, जिसकी ढिठाई से तंग आकर मैं मुसाफ़िरखाने की बेंच छोड़कर वक्त से पहले यहां आ बैठा था, एक गरम सूट में सुसज्जित, सरदार साहब के पीछे-पीछे चला आया। सरदार साहब मेरे और लाला के दरम्यान सज गये, जैसे मुंडेर पर कव्वों के दरमियान कोई सफ़ेद कबूतर बैठ जाए।

पालिशवाला उनके कदमों में बैठकर अपनी पोटली खोलने लगा।

सरदार : क्या लोगे ?

पालिशवाला : ओ सरकार, आप जैसे जन्टलमैन से क्या बात बोलेंगे ? जो जी में आये दे दीजियेगा।

सरदार : फिर भी ?

पालिशवाला : ओ सरकार आप कुछ भी न दीजिये।

सरदार : उस दिन दो पैसा दिया था।

पालिशवाला : (कांपकर) कब ?

सरदार : (पास खड़े अपने एक मित्र को अपनी मोटी गाल की मदद से आंख मारते हुए) उस दिन।

पालिशवाला : कहां साहब, मुझे तो याद नहीं।

सरदार साहब : दो ही पैसा होगा।

पालिशवाला : (हताश स्वर में) अच्छा सरकार आपसे झगड़ेंगे थोड़े ही।

यह कहकर उसने सरदार साहब की लाल पतलून के नीचे जड़े हुए काले बूटों को थाम लिया। मुझे लैमनेड के लिए मुसाफ़िरखाने में अढ़ाई आने देने पड़े थे क्योंकि मैंने पहले तय कर लेने में संकोच किया। मेरे दिल में जलन हुई और पक्का इरादा किया कि आइन्दा संकोच नहीं करना होगा। लेकिन मैं जानता था कि फिर भी संकोच करूंगा।

सामने एक सफ़ेद कुत्ते की एक भूरे कुत्ते से भेंट हुई। नाक के निकट नाक आई। भूरे कुत्ते की गरदन अकड़कर ऊपर उठी। सफ़ेद की नीचे झुकी, और दांत निकल आये। फिर भबकते हुए दोनों पिल पड़े। किसी ने सफ़ेद पर छड़ी से प्रहार किया। भूरा लाइन पर कूद गया। सफ़ेद ने प्लेटफ़ार्म पर अपने आप को सुरक्षित समझा, और वहीं लेट गया।

सरदार : दो पैसे वाला काम न करना।

पालिशवाला : मजाल है, सरदार साहब।

कुछ क्षण चुपचाप रही। इंजनों की फप फप सूं सूं के अतिरिक्त।

सरदार : पानी लगाने से सस्ता रहता है ?

पालिशवाला : नहीं सरकार, चमक बढ़ती है।

सरदार : तुम किसी पालिश कम्पनी के मैनेजर क्यों नहीं बन जाते ?

पालिशवाला : हैं हैं हैं हैं सरकार, आप तो बनाते हैं।

इतने में पटरी पर से उतरी हुई एक इन्सानी आवाज़ हमारे कानों में पड़ी। पेटीकोट की आबादी ने घूमकर देखा। 'लौंडे' का गाना खतम हो चुका था। कुली लोग एक औरत से, लगभग तीस बरस की होगी, और मैले कपड़ों की वजह से कुछ अधिक बदसूरत नज़र आती थी। लेकिन वह हंस रही थी, और ख़ुशी में अपने अंगों की दुनियावी कीमत से बेबहरा थी, उसी से ये लोग छेड़ छाड़ कर रहे थे।

सरदार : यह कौन है ?

पालिशवाला : पगली है साहब और गूंगी भी है।

सरदार : तब तो कुलियों के पौबारह हैं।

पालिशवाला : हैं हैं हैं हैं। (औरत से)। ए....ई ये ये....इधर आ, इधर आ।

औरत दौड़ती हुई आई और एक दिव्य लापरवाही से, जिससे किसी भी सभ्य पुरुष को घबराहट हो सकती थी, सामने ठहर गई।

पालिशवाले ने हाथ से दिशाओं की तरफ़ संकेत करते हुए, और फिर उसे प्रश्नसूचक अदा से मटकाते हुए, औरत ही की भाषा में सवाल किया—'ये? है? है?'

(लेकिन इस प्रकार सरदार का मनोरंजन कर देने से यदि उसे दो पैसे की बजाए एक आना पा लेने की आशा थी तो गरमी के दिनों में पहने हुए उस गरम सूट के रहस्य को वह नहीं समझ सका था।)

औरत ने जवाब में मुस्कराया, चेहरे के दोनों ओर मुट्ठियां बांधकर गालें फुलाईं, और फिर सिर मटकाते हुए, आंखें निकालकर मूंछों को ताव देने का नाट्य किया।

सरदार : यह क्या कर रही है?

पालिशवाला : सरकार इसका ख़ाविन्द जेल में है। यह कह रही है कि वह खूब तगड़ा हो गया है और अब मूंछों को ताव देता हुआ आयेगा।

सरदार : उस कम्बख़्त को पगली को ही ब्याहना था।

पालिशवाला : उसके जाते हुई सरकार। इसका मालिक यहीं रेल में ही नौकर था। ग़बन में गया।

सरदार : यह भी नौकर है किसी की या नहीं?

पालिशवाला : हैं हैं हैं हैं, भली मानस औरत थी साहब। अब तो....क्या कहूं सरकार। ज़माना ऐसा ही है।

मेरा कुली असबाब सम्हालने आ गया था। बोला—तीन औरतें हैं साहब उस आदमी की।

पालिशवाला : हां सरकार, अकेले की तीन बीवियां हैं।

सरदार साहब ने विस्मय से आँखें ऊपर चढ़ा लीं।

पालिशवाला : हैं हैं हैं हैं....

आकाश में कुछ बादल उमड़ आये थे। सरदार साहब ने पैसे कंकड़ी पर पटक दिये।

सरदार : यह पैर ज़्यादा चमका है।

पालिशवाला : नहीं साहब, दो पैसे के लिए खराब हो तो कहिये। हैं हैं हैं हैं, होटल में होता तो चार ही पैसा लेता।

भूरा कुत्ता फिर सफ़ेद कुत्ते के पास खड़ा दुम हिला रहा था।

सरदार उठकर बूटों को देखता हुआ अपने साथी से जा मिला। लकवे वाले ने सोई हुई आवाज़ में कहा—

'अरे ज़रा यह भी पालिश कर दे।'

लेकिन पालिशवाला रुका नहीं, क्योंकि भीड़ बढ़ आई थी और गाड़ी का धुंआ दूर से दिखाई दे रहा था। मैं भी जी कड़ा करता हुआ कुली के पीछे पीछे चला, क्योंकि मैं जानता था कि कुली से कुछ ठहराया नहीं है।

रूप का अन्तिम चित्र

डाक्टर साहब दिन का काम खतम कर चुकने के पश्चात् चिलमची में हाथ धो रहे थे कि उन्होंने आर्टिस्ट के लड़के को दीवार के साथ सिकुड़कर खड़े हुये पाया। पूछने लगे—"क्यों बेटा, क्या हाल है?"

"आपको माता जी ने बुलाया है।"

"क्यों, तकलीफ़ ज़्यादा तो नहीं?'

"पता नहीं, उन्होंने सिर्फ़ यही कहा था, डाक्टर साहब को जल्दी बुला ला।"

डाक्टर साहब ने बालक को अपनी ज़ाहिरी उपेक्षा से विस्मित करते हुये, आराम के साथ हाथ पोंछे, दस्ताने व ओवरकोट पहना, फिर कम्पौंडर

को कुछेक आदेश देकर बाहर निकले। बालक उनका बैग सम्हालता हुआ पीछे पीछे चला। वर्षा तो अब थम चुकी थी, किन्तु सड़क पर लथपथ दलदल थी, डाक्टर साहब छड़ी के सहारे, मुहल्ले की दुकानों के साथ-साथ, किन्तु उनकी छूत से बचने की चेष्टा करते हुए जा रहे थे। आर्टिस्ट गली में रहता था, वरना तांगा ले लेते बालक के पांव नंगे थे, इसलिए उसे सड़क के बीचाबीच उंगलियों का कीचड़ मे दबा दबाकर चलना अधिक रुचिकर था। बादलों से आच्छादित संध्या रात्रि का रूप धारण कर रही थी, किन्तु अब भी कम्बख्त बिजली वालों ने सड़कों पर रोशनी नहीं की। सदर में, जहां न भीड़ होती है न कीचड़, पांच बजे ही जगमग हो जाती है। वहां इस समय शानदार मौसम होगा। यदि इस समय बुलावा न आ जाता, तो आज डाक्टर साहब की शाम की सैर विशेष रोचक होती, क्योंकि शहर के अन्य भद्र पुरुषों की तरह वह भी कैन्टॉन्मेन्ट की ओर ही हवाखोरी के लिये जाया करते हैं।

इसी कारण आज उन्हें दया के साथ अपने आर्टिस्ट मित्र पर खीज भी आ रही थी। जब वह उसके साथ कालेज में पढ़ते थे, तो रूपलाल अच्छे बुद्धिमान विद्यार्थियों में गिना जाता था। पिता भी सम्पन्न आदमी थे, वह यदि चाहता तो विलायत भी जा सकता था। फिर यह दारिद्रय सहेड़ना किस लिये? माना कि आदर्श एक सराहनीय वस्तु है, किन्तु यदि समाज में अभी उसकी कद्र न पाई, तो सत्याग्रह करने से क्या लाभ? उन्हें रूप से कहीं बढ़कर ग़रीबी का सामना करना पड़ा, लेकिन वह अपने कैरियर के प्रारम्भ में ही पहचान गये थे कि संसार में मनुष्य को अकेले दम ही उठना होता है। इस क्रूर संघर्ष में स्वार्थ-रहित होकर कोई किसी की सहायता नहीं करता। नतीजा यह कि वह अब अकेले भद्रपुरुषों की तरह सभ्य व उपयोगी जीवन बिता सकते हैं। किन्तु यदि वह भी यही फ़ैसला कर

लेते कि सरकारी कालेजों से निकले हुये छात्रों के लिये कारोबार प्रस्तुत करना सरकार का ही कर्त्तव्य है, तो अब तक गलियों में सड़ रहे होते, और संभव है, चरित्रहीन भी हो बैठते !

बेशक उन दिनों वह रूपलाल की युक्तियों का प्रत्युत्तर न दे सकते थे। रूप व्यक्तिगत दृष्टि से नहीं, हमेशा सर्वगत दृष्टि से बहस किया करता था। अगर सड़कें और बाज़ार गन्दे हैं और अधिकांश देशवासी उन्हीं में निवास करते हैं, तो मैं क्यों सिविल लाइन्स के बंगलों में ज़ालिमों का पड़ोसी जा बनूं, चाहे मेरे पास दौलत हो ? यदि मैं समझता हूँ कि शिक्षा प्रणाली बुरी है, तो मैं क्यों किसी कालेज में प्रोफ़ेसर बनकर अपने टुकड़ों की खातिर छात्रों को धोखे में डालूं ?

लेकिन यह पुरानी बात थी। अब तो रूपलाल किसी से मिलता जुलता भी न था। घर पर ही पड़ा-पड़ा समय बिता देता। अपने आप को चित्रकार कहने का उसे अब भी शौक था, किन्तु चित्र बनाना भी वर्षों से छोड़ रखा है। संसार ऐसे मनुष्यों को छोड़कर आगे चला जाता है।

अंधकारपूर्ण तंग गलियों के एक लम्बे चक्रव्यूह में से गुज़र कर वह रूपलाल के मकान पर पहुँचे। कमरे की खिड़कियां और किवाड़ सब बन्द थे। हवा में बैंज़ीन (benezene) तथा अन्य दवाइयों की बू फैल रही थी। बिजली के बल्ब पर शेड (shade) के स्थान पर एक कार्बन पेपर चिपका हुआ था। किताबों, कपड़ों और असंख्य अनावश्यक वस्तुओं से कमरा घुट रहा था। आर्टिस्ट अपनी धर्मपत्नी के बार बार मना करने के बावजूद अपने बिछौने की चादर झाड़ रहा था और बड़ी सावधानी के साथ अपने गिरे हुए बाल चुन रहा था।

"हैलो विश्वनाथ!" उसने डाक्टर को प्रवेश करते देखकर कहा।

"रूप!" डाक्टर ने छूटते ही कहा—"यह तुम क्या कर रहे हो? हज़ार बार मैंने तुम्हें उठने-बैठने से मना किया है, तुम क्यों नहीं बाज़ आते?"

"देखो मियां", रूप ने अंग्रेज़ी में बोलना शुरू किया—"गृहिणी को एक बात की आवश्यक सूझ होनी चाहिए और वह यह कि मरीज़ का बिछौना सदा साफ़ सुथरा होना चाहिये। यदि उसको यह न सूझे तो और क्या चारा है? अब बिस्तरा साफ़ है, मैं लेट सकता हूँ, लो। अब खुश हो।"

डाक्टर ने नब्ज़ पर हाथ रखा बुख़ार ज़ोरों से जा रहा था। फेफड़ों में सांस भी बदस्तूर जलन सी पैदा कर रही थी। डाक्टर ने रूप लाल की धर्मपत्नी से मुख़ातिब होकर कहा—"देखिये, अभी मैं एक शीशी भेजूंगा, कार्क खोलकर उसमें खौलता हुआ पानी डाल देना। रूप को कहना कि उसकी थुथनी के साथ मुंह लगाकर लम्बी-लम्बी सांस खींचता रहे। खांसी आराम हो जायगी, कोई फ़िक्र की बात नहीं। बाकी यह दवाइयां देते जाइये।

"लेकिन डाक्टर साहब,"—धर्मपत्नी ने पल्ला मुंह पर सरकाते हुए कहा—"मैंने इसलिये आपको तकलीफ़ नहीं दी। मुझे फ़िकर इनकी बातों से लगता है। तीन घंटे से लगातार बोल रहे हैं, और आराम नहीं करते। आप इन्हें समझाइये। मेरी नहीं मानते।"

"डाक्टर, यहां दो मिनट बैठो, यहां," मरीज़ ने संजीदगी से अनु-

रोध किया, "मैं जानता हूँ कि मुझे डबल निमोनिया है। मुझे यह भी पता है कि बुख़ार तेज़ है और मैं कुछ delerium में हूँ, लेकिन मैं बक नहीं रहा, इसका मुझे विश्वास है। यह स्त्री मेरी बात को नहीं समझती। सारी आयु इसने मेरी एक बात भी नहीं समझी। यह समझती है, मैं बहक रहा हूँ। इसीलिये मुझे ज़्यादह चिल्लाना पड़ता है। सारा दिन मैं इसी इन्तज़ार में रहा हूँ कि जो कुछ मैं देख रहा हूँ, किसी को दिखा दूँ। क्योंकि," वह फिर अंग्रेज़ी में हो गया," मुझे जीवन का अब विश्वास नहीं रहा। यह साफ़ बात है। मैं जानता हूँ, दिल ही दिल तुम भी सहमत हो।"

डाक्टर निर्णय न कर सका कि वह क्या कहे। हालत आगे से ख़राब नज़र आती थी, और कुछ डिलोरियम भी था। लेकिन रूप को पहचानते हुये उसकी इच्छा का विरोध करना उसे उस हालत में और भी उद्विग्न करना था। इसलिये वह चुप रहा। रूप बोलता गया—"तुम जानते हो, मेरे जीवन की ट्रेजडी क्या है ? जब मैं स्वस्थ होता हूँ, तो मेरे शरीर में इतनी सामर्थ नहीं होती कि मैं किसी से बात भी करूं। यही जी चाहता है कि आराम करूं। पड़ा रहूँ। किसी का मुंह तक न देखूं। मेरी ग़रीबी के कारण न कोई मुझे बुलाता है, न मैं किसी के यहां जाता हूँ। लेकिन जब मैंने शराब पी होती है, तो मेरे खून का दौरा तेज़ होता है—वैज्ञानिक उसूल है—उस समय मेरा मस्तिष्क ज़ोरों से काम करता है, चित्र बनाता है। उस समय मैं वह मनुष्य होता हूँ, जो कि, यदि बाधाओं और झंझटों ने मेरी कमर न तोड़ दी होती, तो मैं होता। लेकिन चूंकि लोग मेरे विचारों को नहीं समझ पाते, इसलिये, जीवन से रही-सही ठोकरें मुझे इस समय मिलती हैं। मुझे लोग शराबी कहकर टाल देते हैं। जो कभी मेरी तरफ़ आंख उठाकर भी नहीं देखा करते, वह भी उस वक्त सिर हिलाकर इशारे करते हुये गुज़र जाते हैं—देखो, यह अमुक आदमी का लड़का है। पिता की

सब जायदाद मूर्खता में उड़ा डाली है। अब दूकानों पर बैठा-बैठा बकता है।"

स्त्री ने रोते हुये पति के माथे पर हाथ रखा—"ऐसी बातें क्यों सोचते हो, नरक में पड़े दुनियां। तुम अब आराम करो। डाक्टर साहब भी थके हुये होंगे। जब ठीक हो जाओगे तो बातें करते रहना।"

"देखो, इसकी तरफ," रूप ने पूरे ज़ोर से हंसते और खांसते हुये कहा, "जैसे मैं कहीं संसार की बेवकूफ़ी के विरुद्ध अपीलें कर रहा हूँ। यह नहीं समझती। इसने जीवन में मेरी एक बात नहीं समझी। सिर्फ़ पांच मिनट के वास्ते, डाक्टर, फिर तुम चले जाना। तुम मेरे एकमात्र मित्र हो। तुम्हारी राय की मैं कद्र करता हूँ—

"इस समय बुखार तेज़ है, पर इतना तेज़ नहीं कि बेसुध हो जाऊँ। उत्तेजना है, लेकिन—अहोभाग्य!—उसी मिकदार में, जिससे मेरे मस्तिष्क को पूरी सहायता मिले, बस। मैं इस समय वह प्रेमीथियस नहीं हूँ, जो पत्थर के साथ बंधा है, बल्कि वह जिसका रोम रोम एक नई स्वतंत्रता, नई स्फूर्ति की अनुभूति पा रहा है। यह तुम ठीक जानों। मेरी बातें मेरी पत्नी को बहकी हुई बेशक नज़र आयें, किन्तु तुम्हें जांच होनी चाहिये।

"इसी प्रसंग में यह एक मार्मिक कहानी बन सकती है। जब स्वस्थ हो तब भी संसार न समझे और जब बीमार हो तब भी न समझे—ह-ह, लेकिन मैं कहानियां नहीं लिखता।"

डाक्टर चुपचाप सुन रहा था। यह विचित्र पहेलियां न वह बूझ सकता था, न बूझना ही चाहता था। उसके लिये यह स्पष्ट था कि टाक्सीमिया

बढ़ रहा है और मरीज़ को आराम की बेहद ज़रूरत है। किन्तु इसका और क्या उपाय हो, सिवाय इसके कि रूप अपने मन का बोझा उतार दे ? नहीं तो वह पट्टी भी कहां रखने देगा ? शायद इस मानसिक विभ्रान्ति में रूप कोई विशेष बात कहने की चेष्टा कर रहा हो ?

"हां, कहानियां नहीं लिखता और चित्र भी नहीं बनाता। तुम यही सोचते हो न ? मैं तुमसे सहमत हूँ। मैंने अभी तक कोई काम का चित्र नहीं बनाया। इसीलिये संसार की दृष्टि में मुझे कलाकार नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम्हें याद है कि मैं क्लास में बैठा-बैठा दीवार पर तस्वीरें देखा करता था। कई बार तुम्हारी शंका मिटाने के लिये मैंने पैंसिल से कई चित्र पक्के करके तुम्हें दिखाये थे ? मैंने अपनी आयु में हज़ारों मास्टर-पीस कल्पित किये हैं—उन्हें देखा है, छाती से सटाकर रखा है, लेकिन चित्रित नहीं किये। क्यों करता ? मेरे संसार को उनकी आवश्यकता न थी। मैं लोगों की कुन्द नज़रों द्वारा अपनी कला का अपमान बरदाश्त नहीं कर सकता था।

"या यूं कह लो कि दुर्भाग्य से मुझे अपनी कल्पना से बाहर कोई भी वस्तु ऐसी सुन्दर नज़र नहीं आई, जिसका मैं चित्र बनाता। या बेशक यह समझ लो—और शायद यह हो भी ठीक—कि आलस्य का शिकार होकर मैंने ब्रश सम्हालने में भी प्रवीणता हासिल नहीं की।

"लेकिन ईश्वर की दृष्टि में मैं अवश्य पेन्टर हूँ। कैन्वस उठाकर साथ थोड़े ही ले जाई जा सकती है। मेरा तो विश्वास है कि जो दृश्य कल्पना देखती है, वह हू-बहू कैन्वस पर लाया ही नहीं जा सकता।

"बस, यह भूमिका थी। अब इधर आओ, यह देखो, मेरा अन्तिम चित्र।"

डाक्टर उठकर उसके सिरहाने के पास आ गया। रूप फ़र्श की ओर संकेत कर रहा था, किन्तु डाक्टर को वहां एक रूमाल के अतिरिक्त और कुछ नज़र न आया। डाक्टर का संदेह अब विश्वास का रूप धारण करने लगा। स्त्री दीवार के साथ अशान्तमयी मुद्रा में खड़ी थी। डाक्टर ने उसे ठंडी पट्टी तैयार करने का इशारा किया और स्वयं खिन्न चित्त होकर खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। डाक्टर होकर भी उसकी आंखें डबडबा आईं।

इस पर रूप ने ज़ोर से कहा—"मूर्ख कहीं का। तुम्हारी दृष्टि हमेशा वस्तुओं पर ही रही, आगे नहीं गई। देखो भाई, इधर आओ, इसी रूमाल में देखो।" डाक्टर का हाथ खींच कर रूप ने फिर उसे अपने पास बिठा लिया, और अब धीमी आवाज़ में उसे बड़े प्यार से समझाने लगा।

उसकी उंगली के इशारे का अनुसरण करके डाक्टर ने देखा कि सचमुच रूमाल पर कार्बन पेपर से ढके हुये बल्ब का प्रकाश एक चित्र का रूप धारण कर रहा है। "ऐसा दीखता है कि कम्बल ओढ़े हुये कोई मनुष्य ज़मीन पर बैठा है। उसके चेहरे की हड्डियां निकली हुई हैं और कनपट्टियां अन्दर धसी हुई हैं। ऐसा मालूम होता है कि कोई मज़दूर सारे दिन की—सारे जीवन की—मेहनत के बाद थककर आ बैठा है और अब आंखें मूंद कर प्यास और श्रद्धा भरे ओठों से एक श्वेत सुकोमल हाथ को चूम रहा है, जो शायद किसी अदृश्य युवती ने उसके कंधों पर डाल रखा है। एक मनुष्य और उसके कंधे पर एक हाथ। बस।"

डाक्टर कुछ क्षण स्तब्ध होकर देखता रहा, लेकिन कुछ कह न सका। एक लम्बी सांस खींच कर उठ खड़ा हुआ। रूप स्नेहपूर्ण नेत्रों से रूमाल की ओर देखता हुआ कह रहा था—"कितना साफ़ कितना कोमल, कितना प्यारा हाथ! डाक्टर

शायद हर एक मनुष्य को जीवन में कभी न कभी एक ऐसा हाथ पकड़ने का अवसर मिलता है। लेकिन कई उसे पकड़ कर फिर छोड़ते नहीं, उस हाथ की खातिर संसार में उन्हें क्या नहीं सहना पड़ता—ठोकरें, पामालियें, मुसीबतें। मगर वह अपने अरमानों को दबा कर सब कुछ सहते हैं, इस आशा में कि शायद वह हाथ........"

डाक्टर ने देखा कि उसकी आंखें डबडबा गई हैं। वह अपने मित्र के सिरहाने आ बैठा और उसके माथे पर हाथ रख कर पुचकारने लगा—"पागल मत बनो रूप, मैं यह ज़िम्मा लेता हूँ कि तुम ठीक हो जाओगे, और यह चित्र पूरा करोगे। सचमुच यह एक अपूर्व चित्र होगा धीरज रक्खो।"

यह कहते हुये उन्होंने आर्टिस्ट की पत्नी को दूध लाने के लिये कहा और तिपाई पर पड़ी हुई दवाइयों को ठीक करते हुए कई सांत्वना-प्रद वाक्य कहे। मरीज़ अब सम्हल गया था। उसे तसल्ली थी कि उसकी बातों पर डाक्टर को अविश्वास नहीं हुआ।

उसने डाक्टर से अन्तिम प्रेरणा की, वह उसकी पत्नी को हिदायत कर दे कि इस रूमाल को किसी हालत में भी यहां से न हटाया जाय।

स्त्री दूध लाई और आर्टिस्ट ने चुप-चाप पी लिया। डाक्टर साहब ने एक नुस्खा लिखा और साथ ही स्त्री को रूमाल न हटाने का निर्देश किया। इसके बाद वह छड़ी उठा कर चल दिये। थड़े पर आर्टिस्ट का लड़का अन्य बच्चों के साथ खेल रहा था। डाक्टर साहब को उतरते देख कर वह फ़र्माबरदार ऊपर बैग उठाने चला गया।

गलियों के चक्रव्यूह में से वापस निकलते वक्त डाक्टर साहब असमंजस में थे कि रूमाल वहीं पड़ा रहने देने में उन्होंने ग़लती तो नहीं की थी ? शायद उसे लगातार देखने से मरीज़ और भी उत्तेजित होता रहे और अपनी रही-सही शक्ति भी ख़र्च कर डाले। लेकिन उठा देने से भी तो वह झुंझला उठता। इसी तरह वह कुछ देर सायंकाल की घटनाओं पर विचार करते रहे। अपनी सारी आयु में उन्होंने एक रूमाल पर इतनी गहरी सोच नहीं की थी। पीड़ित होकर भी वह एक बार मुस्करा दिये।

शैनरले-टैनरले-हैनरले

निश्चल, स्तब्ध, शान्त ! तमाम दरवाज़े बन्द थे। दोपहर की कड़ी धूप घंटों इस कोशिश में रही कि किसी न किसी तरह, खिड़की में से नहीं तो किसी छेद या झरोखे से ही सही, इस समृद्ध कमरे में कदम रखने का भी नयाज़ हासिल कर ले, लेकिन नाकामयाब होकर अब ढल रही थी। छत का पंखा आदर्श नौकर की तरह—जो अफ़सोस ! इस ज़माने में नहीं मिलते—बग़ैर शोरगुल किये चक्कर मार रहा था। उसके नीचे निर्मल, एक गुदगुदे सोफ़े पर टांगें पसारे, दिन का तीसरा सिगरेट पी रहा था। कभी-कभी उसकी आंखें दीवारों पर टंगी हुई तस्वीरों की ओर जातीं, और वह हैरान होता कि ईश्वर जिसे धन देता है, शऊर भी क्यों नहीं देता। सोचता, अगर अंगीठी पर राम और सीता की तसवीर ही रखनी थी, तो क्या उसे सलमे और सितारे में जड़ाना भी ज़रूरी था ? फिर उस तसवीर की पड़ोस में हाथियों और चीतों पर बन्दूकें ताने हुये अंग्रेज़ों का किस प्रकार सामंजस्य था ?

लेकिन वह उन कृतघ्न मेहमानों में से न था, जो हज़ार खातिर होने पर भी मेज़बान पर तर्क छांटते ही रहते हैं। अगर रस नहीं था, सम्पन्नता तो थी। इसी आराम की बदौलत निर्मल ने सुबह से अब तक केवल तीन ही सिगरेट पिये थे, वरना जीविका की तलाश में दर बदर अपने व्यक्तित्व के मर्मस्थलों पर ठोकरें खाते हुये अब तक बीस पी गया होता। महीनों बाद उसने आज सभ्य पुरुषों की तरह स्नान किया है, और दोपहर सूट पहनकर, सोफ़े में ग़र्क हो, रेडियो सुनने में बिताया है।

आज उसे जीवन की प्रथम अभिलाषाओं के विषय में सोचने की फ़ुर्सत मिली थी। काश, किसी की न खुशामद हो, न अधीनता। किसी पहाड़ की तलहटी में हो एक छोटा सा झोंपड़ा, जिसके इर्द गिर्द की नैसर्गिक सुषमा ही उसकी सजावट हो। गुलामी यदि हो, तो किसी पीयुषवर्षिणी प्रेयसी की, धुंआ उगलने वाले सिगरेटों की नहीं। काम हो कला, कविता, संगीत, और उन्माद अपने पड़ोसियों पर प्रेम और सेवा की बौछार करते रहना।

इस निरर्थक शेखचिल्लीपन में आकर वह उठ बैठा और बेचैनी से कालीन पर इधर-उधर टहलने लगा, मानों व्यक्तिगत जीवन को मसल डालने वाली कलुषित सामाजिक शृंखलाओं को उसी वक्त छिन्न-भिन्न, चूर-चूर कर देना चाहता हो। सिगरेट का शेष टुकड़ा अंगीठी में फेंककर उसने एड़ी से दबोच दिया और फ़ैसला किया कि अब आइन्दा सिगरेट नहीं पियूंगा। इस बचत से क्रान्तिकारी साहित्य इकट्ठा करूंगा या इसे कांग्रेस के हवाले कर दूँगा। अगर परिपूर्णता इस जीवन में मुझे नसीब नहीं, तो न सही, मैं भावी पौध के हितार्थ अपना जीवन स्वाहा कर देने का बीड़ा उठाता हूँ। मैं मनुष्य हूँ। मुझसे दबना सहा नहीं जाता।

यह पहली बार नहीं थी।

उसी समय किवाड़ पर दस्तक किये बिना ही आंधी की तरह उसे फट से खोलकर रायसाहब जगन्नाथ ने प्रवेश किया—तोंद पहले, .खुद पीछे। उन्हें देख कर निर्मल निराश हो गया—उस खिलाड़ी की तरह, जिसे खेल शुरू होने के दो सेकेण्ड पहले मैदान से बाहर बुला लिया गया हो। रायसाहब कमरे के वातावरण को अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से भरते हुए अभ्यासानुसार ऊंचे स्वर में बोले—"अरे अभी यहीं पड़े हो ? यह चुपचाप लेटे-लेटे क्या सोचते रहते हो तुम ? अमां, अजीब इंसान हो ! हमें तो एक मिनट बेकार बैठना पड़े, तो जान मुश्किल में आ जाती है।"

इस नाटकीय मुद्रा में खड़े हुये रायसाहब जगन्नाथ फ़िरोज़नगर छावनी के एक सुविख्यात व्यक्ति, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा म्यूनिसिपल कमिश्नर हैं। इनकी कपड़े की दो बड़ी-बड़ी दूकाने हैं (गोल कमरे में टंगी हुई कई एक तस्वीरों को कलेंडरों और कपड़े के थानों से ही स्थानान्तरित किया गया है)। न केवल छावनी और शहर, बल्कि प्रान्त भर में इनकी धर्मपरायणता, दानवीरता, कार्यनैपुण्य तथा मिलनसारी की धूम है। वे इस समय डिप्टी कमिश्नर बहादुर के बंगले पर हिन्दू महासभा की ओर से डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में हिन्दू अधिकारों को सुरक्षित करने के लिये एक व्यक्ति विशेष को मुकर्रर करवाने का प्रस्ताव लेकर जाने वाले डेपूटेशन का प्रभावशाली नेतृत्व निभाकर लौट रहे हैं। मझोला कद, पेट अलीगढ़ के ताले की तरह पक्षों में फैला हुआ और सिर तकरीबन गंजा है। मुख बच्चे की तरह सरल और हँसी, लगातार पान खाते रहने की वजह से बटुये के बन्द होने और खुलने से समता रखती है। रायसाहब को निर्मल की शकल सूरत

अच्छी लगती है, वरना कौन अपने बहनोई के बेकार दामाद की परवाह करता है।

रायसाहब कुछ क्षणों के लिये एक सोफ़े पर बैठे, लेकिन इसे बेकार बात समझकर उसी उग्रता के साथ उठ खड़े हुये और बोले—"आओ, तुम्हें कार में घुमा लाऊं।"

निर्मल में रेडियो का धीमा संगीत बन्द कर दिया और कहा—"चलिये।"

सड़क पर पहुँचकर रायसाहब ने मोटर की तरफ़ इशारा करके अपने नाटकीय अन्दाज़ से मुस्कराते हुये पूछा—"गाड़ी बुरी नहीं—क्यों?"

"वाह, बड़ी शानदार है! कौन सा मेक है?"

"शैवरले! बड़ा अच्छा रहता है। हर एक पुर्ज़ा जब चाहो, तबदील किया जा सकता है।"

"ओह शैवरले? हूँ, १६३६ माडल होगा?"

"नहीं....है तो तेंतीस" रायसाहब ने कुछ नाराज़गी से कहा, "लेकिन चली बहुत कम है। कर्नल तो बेचता ही न था, बहुत ढंग से निकाली हमने। जब दूकान पर आता, हम कह देते, "साहब, अब यह गाड़ी तेरे काम की नहीं रही।' किसी देशी के पास होती, तो अब तक कचूमर निकल गया होता इसका। अंग्रेज़ ही मशीनों को संभालना जानते हैं।"

निर्मल ने अब, दिल से बनावटी लेकिन बाहर से दिली, दिलचस्पी के साथ कार की सराहनापूर्ण प्रदक्षिणा शुरू की। कार अगर शैवरले की जगह हैवरले, टैवरले या नैवरले कुछ भी हो, तो उन लोगों के लिये कोई फ़र्क नहीं पड़ता, जो कभी कार खरीद ही नहीं सकते, लेकिन सच तो यह था कि अपनी भावनाओं का दमन करके दूसरों की हां-में-हां मिला लेने का निर्मल को काफ़ी अभ्यास हो चुका था। जब प्रदक्षिणा हो चुकी, तो रायसाहब को अंतिम संतृप्ति प्रदान करने के लिये उसने पूछा—"कितने की?"

"तू बूझ!" रायसाहब ने विजयी उल्लास से पतलून की पाकेट में कुँजियों से खेलते हुये और उनके ताल से पान के चबाने का ताल मिलाते हुये आदेश दिया। निर्मल ने गम्भीरता के साथ होंट टेढ़ा करते हुए कहा—"यही बारह सौ की होगी।" उसकी आशानुसार रायसाहब पहले तो हंसी में बेसुध हो गये, और फिर विजयी आंखों से एक बार गाड़ी की ओर, फिर निर्मल की ओर टकटकी बांधकर बोले—

"छः सौ"

"छः सौ?"

"छः सौ।"

दुहराकर रायसाहब उल्लसित बाजीगर की सी उपेक्षा के साथ गाड़ी में आ बैठे और सेल्फ़ दबाने लगे। निर्मल भी छः सौ की पहेली पर आश्चर्य से सिर हिलाता हुआ उनके साथ आ बैठा। कार चली।

धूप ढल चुकी थी। बड़े मैदान में कुछ पूरबिये बैरे और जमादार गोरे सिपाहियों की उतार फेंकी वर्दियों में सजकर बड़े ठाठ से फुटबाल खेल रहे थे। पास ही एक देशी भद्रपुरुषों की क्लब थी, जहां कुछ नवयुवक अंग्रेज़ों से भी बढ़ चढ़कर अंग्रेज़ी और बुज़ुर्ग, न इधर न उधर की पोशाक में टेनिस का शौक फ़र्मा रहे थे।

निर्मल अपने सर्वतः सफल सम्बन्धी से घबराता था। जीवन में कोई वस्तु ऐसी न थी, जिसे ये दोनों समदृष्टि से देखते हों। न कोई ऐसा विषय ही था, जिसमें इनकी समान दिलचस्पी हो फिर भी बिरादरी के हुक्म के मातहत इन्हें हर तीसरे चौथे महीने कुछ दिन इकट्ठे गुज़ारने पड़ जाते थे। कभी कोई शादी, कभी कोई ग़मी—यदि अपने नहीं तो और किसी संबंधी के घर। यह नहीं तो लाहौर से पेशावर जाना ही फ़िरोज़नगर में सफ़र तोड़ने की बड़ी भारी दलील था।

जब कुछ समय गुज़र गया और कोई बात न छिड़ी, तो निर्मल ने कहा—"आपने ड्राइव करना अभी सीखा या पहले ही से जानते थे ? खूब उद्योगी इंसान हैं आप।"

बस इतना काफ़ी था। आपस में यह स्थायी समझौता था कि निर्मल बात छेड़ दे और रायसाहब उस पर एक हल्का सा भाषण देकर उसे ठिकाने लगा दें। संसार में कोई ऐसी समस्या न थी, जिसे वह अपनी प्रज्ञापूर्ण युक्तियों से सुलझा न दें। यदि निर्मल इस पर आगामी युद्ध के बारे में पूछ बैठता, तो उस पर वे बीस मिनट बोल सकते थे। यदि स्त्री शिक्षा का ज़िक्र हो जाता, तो उसकी भी सांगोपांग समालोचना कर सकते थे। यह विशाल परिचय उन्होंने पुस्तकों से नहीं लिया था। जिस बाज़ार में से अब मोटर गुज़र रही थी, वहां के सारे पुस्तक विक्रेता उनके अपने सज्जन-मित्तर हैं। यदि रायसाहब चाहें, तो वे लोग खरीद के मोल उन्हें किताबें बेच दें। लेकिन रायसाहब के पास

इस सिरदर्दी के लिये वक्त कहां ? रसूख़वाले व्यक्ति का सिर ऊंचा रहता है। अपने सिंहासन पर बैठा हुआ वह ज़माने की दौड़धूप और उसके लक्ष्य को भली भांति देख सकता है। किताबों-वितावों में क्या रखा है ?. निर्मल निश्चिन्त होकर सुनने लगा—"ज़रूरत ईजाद की माँ है, भाई। दो एक महीना ड्राइवर रख कर भी देख लिया था, लेकिन आखिर यही फ़ैसला किया कि मशीन एक ऐसी चीज़ है जिस पर दो मनुष्यों का हाथ नहीं होना चाहिये। ड्राइवर को कार का दर्द नहीं होता। पेट्रोल में गड़ बड़ करने की भी हर एक ड्राइवर में आदत होती है। और फिर पैसा कमाना, तुम जानते हो, आजकल आसान काम नहीं। हमारा क्या है सुबह दूकान पर गये और कहीं रात में लौटे। यदि किसी अफ़सर ने बुला भेजा, या कभी महासभा की मीटिंग हुई, तो कार की ज़रूरत पड़ी, वरना मुझे तो अपनी सुध नहीं रहती। अब इस थोड़े से काम के लिये तीस रुपये माहवार का एक ऐसा आदमी रख लेना, जो सारा दिन निठल्ला बैठा रहे, मेरे जैसे .खून-पानी एक करके पैसा कमाने वाले इंसान को बर्दाश्त नहीं हो सकता।

"और एक तीसरा कारण भी है।" रायसाहब ने आंखें मींचकर गुदगुदाते हुये कहा—"हमने तुम्हारी तरह बीबी को सिर पर चढ़ाकर थोड़े रखा है ? अगर ड्राइवर हो तो सारा दिन सैर करती फिरे। मुझे औरतों की आज़ादी से हमेशा डर लगता है। ऐसी-ऐसी वारदातें अखबारों में छपती हैं कि कलेजा बैठ जाता है ....हां, और एक चौथी वजह........"

सड़क पर कुत्तों की एक टोली खेलकूद रही थी। यह स्पष्ट करती हुई कि रायसाहब के हाथ से भी खूब चल सकती है, कार वेग में जा रही थी। रायसाहब ने बचकर निकलने की कोशिश की। पर तब तक मडगार्ड

एक कुत्ते के मुंह पर लगा और उसका भीषण चीत्कार दूर तक सुनाई देता रहा ।

"हां, चौथी वजह...."रायसाहब आज अपनी लहर में थे, "हमको कभी न कभी ड्रिंक विंक भी करना हुआ, कभी न कभी यार दोस्त नाच तमाशे पर भी खींच ले जाते हैं—मैं स्पष्ट बात कहता हूँ, तुम अपने अज़ीज़ हो, तुम से क्या छिपाना—अब अगर ड्राइवर बन्दर की तरह बाहर इन्तज़ार कर रहा हो, तो इंसान पकड़ा जाता है । सोसाइटी की निगाहों में हरगिज़ नहीं आना चाहिये, हमारा तो यह उसूल है ।"

"बेशक ।"

अब निर्मल के मन में, इस शाम के दौरान में, सिगरेट पीने की लालसा फिर जाग्रत हुई । उसकी उनिन्द्र भावुकता के लिये सिगरेट मरहम का काम देता था । यदि पास होता तो वह अपने प्रण की परवाह न करके शायद सुलगा ही लेता, लेकिन सिगरेट केस वहीं छोड़ आया था । और कुदरत की सितमज़ारीफ़ी रायसाहब तम्बाकू नहीं पीते थे ।

कुछ देर बाद जब कार माल रोड के स्वच्छ निराकुल वायुमंडल में पहुंची, तो निर्मल ने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ । केवल सिगरेट सुलगा लेना ज़िन्दगी की तलखियों के लिये काफ़ी नहीं है ।

इतने में कार एक बिल्डिंग के सामने रुकी । यह रायसाहब की नयी इमारत थी, जिसके अगले हिस्से में दूकानें रखने की इजाज़त कैन्टोन्मेन्ट बोर्ड से केवल उन्हें अपने रसूख के बल पर मिली थी ।

दोनों इमारत देखने उतरे । रायसाहब की मुद्रा अब गम्भीर,

रोबदार थी। कोठी की पिछली ड्योढ़ी में तीन सिख मिस्त्री ईंटों के चूल्हे पर अपनी रूखी-सूखी दाल-भाजी पका रहे थे। रायसाहब को देखकर वे उठ खड़े हुये और आदर सहित फ़तह बुलाई। आदर क्यों न करते ? रायसाहब ने साधारण देखभाल के बदले में उन्हें खुले दम बसेरा करने की इजाज़त दे रखी थी। सुबह नल पर नहाने धोने का आराम था, रात में सोने का। इससे बड़ी उदारता क्या हो सकती है ?

फिर भी पराई वस्तु का किसे दर्द होता है ? देखो, कैसी मोटी-मोटी लकड़ियां जला रहे थे। रायसाहब ने फिर भी कोई आलोचना नहीं की। केवल इतना ही कहा—"भाई सरदारो ! लकड़ी समझ-बूझकर जलाया करो। मोटे टुकड़े कहीं न कहीं काम आ जाते हैं। छिलके थोड़े तो नहीं हैं न !"

सरदारों ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—"सत बचन महाराज।"

निर्मल ने उनके कठोर चेहरों की तरफ़ देखा कि कहीं उन पर खिन्नता की झलक हो, मगर नहीं थी। सरदार संतुष्ट थे। एक रायसाहब के पीछे, दिन में जितना काम मुकम्मल हुआ था, दिखाने चल पड़ा। जहां कहीं खिड़कियां बन्द होने की वजह से अन्धकार होता, वहां वह आगे हो जाता। फ़र्शों पर लकड़ी, ईंट, मसाले के स्थान स्थान पर अम्बार लगे हुये थे, किन्तु उसके नंगे पैरों में न कहीं कील चुभी, न ठोकर लगी। उसकी नंगी, काली, रस्सी की तरह तनी टांगों के लिये यही ड्राइंग रूम बने थे। महीने तक मकान मुकम्मल हो जायगा। फिर इन कमरों में पतलूनों में सजी हुई टांगें आ जायँगी, चमकते हुये बूट चलने लगेंगे। लकड़ी के छिलकों के स्थान पर कालीन बिछेंगे, ईंटों की जगह बुक-कैस, अल्मारियां, सोफ़े। तब यह सूखी हुई टांगें और किसी इमारत में चली जांयगी। यह सोचकर निर्मल मुस्कराया।

मकान की खूबी यह थी कि चाहे कोई होटल बना ले, चाहे क्लब, चाहे अंग्रेज़ रह ले, चाहे देशी, सबकी ज़रूरतें पूरी होती थीं। और यह डिज़ाइन रायसाहब का बिल्कुल अपना था।

जब प्रदक्षिणा समाप्त हुई, तो मिस्त्री हाथ बांधकर बोला, — "महाराज एक विनती है।"

निर्मल ने सोचा, "आह ! यह सब विनम्रता और आदर दिखावट की चीज़ थी। असली चीज़ तो अब आई। देखें क्या माँग-पत्र पेश होता है।"

लेकिन जब उसने सुना तो दंग रह गया सरदार कह रहा था—"महाराज, ये सफ़ेदी वाले ठीक काम नहीं करते। यहां महाराज, काम ठीक साढ़े सात बजे सुबह शुरू हो जाता रहा है, लेकिन वे आठ साढ़े आठ से पहले आते हो नहीं और समझिये छः से पहले ही चले जाते हैं। आज सिरफ़ तीन कमरे ही किये हैं ! सबका अपना-अपना नसीब है सरकार, लेकिन मालिक का नुकसान होता हमसे नहीं देखा जाता, इसीलिये विनती की है।"

यह सुनते ही रायसाहब की हालत बदल गयी। ज़बान की लगाम को आवश्यकता से अधिक ढीला कर उन्होंने हरामखोर सफ़ेदी वालों पर खूब फूल बरसाये। मिस्त्री अपने धर्मपालन पर संतुष्ट, भीगी आंखों से सराहना की भीख मांग रहा था।

"अच्छा", रायसाहब बात पर आये, "कुछ मत कहो उन्हें। पैसे मुझ ही से लेंगे न ? अभी जानते नहीं मुझे। देखूँगा कैसे ईमानी हिसाब पर लेते हैं ?"

इतना कहकर वे कार में आ बैठे। पल भर में फिर वही गुलाबी रायसाहब थे। जमते ही लाल बटुये में से दांत दिखाकर कहने लगे—"इसका कम से कम डेढ़ सौ माहवार किराया आयेगा।"

दो संसारों के मध्यवर्ती शून्य में लटकने वाले निर्मल को ऐसा लगा, मानों रस्सी टूट गयी है और वह एक अथाह कूप में गिरता चला जा रहा है, किसी भयानक स्वप्न में। सायंकाल में दूसरी बार उसे सिगरेट पीने की तीव्र लालसा हुई। आदर्शवाद का उत्साह बुखार की तरह आया था, पर अब ठंडा पड़ चुका: था। जीवन का सबसे बड़ा उत्साह यही है कि व्यक्ति सब कुछ देख सके। निश्चय ही सिगरेट इसमें मदद देते हैं। इतना उद्यम उसमें नहीं था कि मोटर रुकवाकर डिबिया खरीद ले। लेकिन इन्तज़ार ज़बरदस्त थी। सिगरेट तो क्या, हमारे देश में इन्तज़ार करने से भगवान भी मिल जाते हैं। निर्मल की इच्छा-पूर्ति में देर नहीं लगी। कार अब पैरीशियन रेस्तरां के आगे रुकी। सफ़ेद पोशाक वाले बेरे ने दरवाज़ा खोला।

कमरे का आधा हिस्सा अंग्रेज़ स्त्री पुरुषों और दिव्य समाज के हिन्दुस्तानियों से भरा था, जिनमें से प्रायः सभी बेंत की कुर्सियों में जमकर शराब पी रहे थे। हाल के बाकी हिस्से में उल्लसित जोड़े छाती से छाती मिलाकर डांस कर रहे थे। दूर एक कोने में कुछ हब्शी पैर हिलाहिलाकर और राक्षसों की तरह दांत दिखा-दिखाकर बैंड बजा रहे थे। तम्बाकू के धूएँ से वायुमंडल घुट रहा था।

बैरा पहचानता था कि कलियुग में हिन्दू-धर्म के स्तम्भ रायसाहब इस मजलिस में बेपर्दा नहीं बैठते। वह उन्हें साथ के कमरे में ले गया, जहां उन जैसे असाधारण पक्षियों के लिये आच्छादित घोंसले थे। एक में रायसाहब के चुने हुये मित्र पहले से ही इन्तज़ार में थे। चांदी का एक सिगरेट केस मेज़ पर खुला पड़ा था।

लेकिन सिगरेट से भी बढ़कर शराब में—यदि संगीत भी साथ हो—एक नवयुवक के मन की ऊबड़ खाबड़ हालत को समतल कर देने की विशेष ताकत होती है। "आप क्या पियेंगे?" What is your drink? कहकहा, आज़ादी, सौहार्द, दीवारों का धम से ज़मीन पर आ गिरना। यही तो अवसर होता है। बड़े आदमियों के साथ उठना बैठना व्यर्थ नहीं जाता। डिगरियों को कौन पूछता है? पहाड़ की तलहटी में वह शान्त-कुटीर....बड़ी दूर की बात है। और वह आत्म बलिदान....तो और भी असंभव है।

आखिर बैरे ने बिल पेश किया, जो कुछ आग्रह के बाद रायसाहब ने ख़ुद अदा किया, लाल-लाल अस्थिर उंगलियों से पैंतीस रुपये। दो रुपये बैरे के।

बाहर निकलते वक्त निर्मल को ऐसे लगा कि डांस-रूम में लकड़ी के छिलके ही छिलके बिछ रहे हैं और उन पर सूखी-सूखी काली-काली टांगें छटपटा रही हैं। बरामदे में पहुँचकर उसने देखा कि रात हो चुकी है। तारे शुभ्र आकाश में अपनी महफ़िल जमा चुके हैं। चांद नहीं है, लेकिन ध्रुवतारा पिघले हुये सोने की बूँद की तरह लटक रहा है।

रायसाहब के साथी अपनी कार में पहले बिदा हो गये, लेकिन रायसाहब खड़े-खड़े अपनी कार के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहे थे। उस पर हाथ फेर-फेर कर कह रहे थे "Isn't she a beauty?"

निर्मल उनसे अधिक होश में था। फिर भी वह इंकार न कर सका। बेशक कार रायसाहब की परखी हुई सुन्दरियों से भी सुन्दर थी। सड़क की रोशनियां उसकी सफ़ेद और लाल पालिश में अलौकिक चमचमाहट पैदा कर रही थीं।

रायसाहब ने कार को प्रेमावेश में आकर चूम लिया। दो-एक भिखारियों को डांटकर फिर जिस सड़क से आये थे, उसी सड़क से वापस लौट चले। कह रहे थे—"मैंने पी रखी हो, तो बेहतर ड्राइव कर सकता हूँ। देखा....? यह देखा........? मजाल है बीबी को शक भी हो सके।"

———

बिज़नेसमैन की डायरी

हम लोग, करीब दस बारह आदमी, हर साल काश्मीर में गर्मियों में इकट्ठे हो जाते हैं। सितम्बर समाप्त होते ही तितर-बितर हो जाते हैं, परन्तु जून के आरम्भ में हमारी पार्टी फिर बननी शुरू हो जाती है। कभी दो-एक नहीं भी आते, परन्तु उनके स्थान की दो-एक नये व्यक्ति आकर पूर्ति कर देते हैं, इसलिये हमारा प्रोग्राम कभी नहीं बिगड़ता। मिल-मिलाकर हमने हाकी टेनिस, सैर वग़ैरह सबका प्रोग्राम बनाया है, परन्तु हमारा सबसे आकर्षक प्रोग्राम किश्ती चलाना होता है। प्रातःकाल ६ बजते ही हम लोग डल झील के गेट पर पहुंचकर मिशन स्कूल की दो-एक लम्बी किश्तियों पर सवार होकर झील के मध्य में पहुंच जाते हैं। वहां पर सब अपने कपड़े उतारकर पानी में कूद पड़ते हैं। दो घंटे हंस खेलकर आठ बजे तक घर वापिस आ जाते हैं।

× × ×

हमारा यह प्रोग्राम करीब सात साल से लगातार ऐसा ही चला आता है, मगर मैं पिछले दो-तीन साल से इसमें सम्मिलित नहीं हो सका था। यह नहीं कि काश्मीर नहीं जाता था, बल्कि मैं एक साल तो सर्दियों में भी वहीं रहा, परन्तु मेरा मन तब व्यायाम और खेल-कूद से उचाट हो गया था। वह दिन थे, जब मैंने एम. ए. पास करके नया-नया 'बिज़नेस' में प्रवेश किया था। इन दिनों मेरा मन विचलित रहता था। कालेज में पढ़ते हुये बाहरी संसार से अनभिज्ञ था। यह न मालूम था कि संसार में तालीम की कद्र टके के तौल पर होती है, और इसलिये इंसान जितनी डिग्रियां प्राप्त कर सके, करे।

कालेज में मुझे अंग्रेज़ी साहित्य का चस्का था। पढ़ने से लिखने में अधिक रुचि थी। नतीजा यह हुआ कि कालेज पत्रिका की तरफ़ से तो मुझे इनाम मिलते रहे, परन्तु एम. ए. में मेरा डिवीज़न थर्ड आया। थर्ड डिवीज़न पाकर पिता जी को विलायत भेजने के लिये मजबूर न कर सका, इसलिये यही फ़ैसला किया कि उनके व्यापार में पड़कर साथ-साथ अपनी साहित्यिक रुचि को भी बढ़ाता रहूँ। मैंने सुन रखा था कि अंग्रेज़ लड़के भी आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज से निकलकर यही करते हैं।

परन्तु कुछ समय बाद ही दो बातें साफ़ दीख पड़ीं। एक तो यह कि जो अंग्रेज़ी इतने शौक से पढ़ी थी, उसकी कोई कद्र न रही। कई अखबारों को कहानियां और कवितायें लिखकर भेजीं, पर वह लोग यही उत्तर देते कि हिन्दुस्तानियों के हाथों लिखी हुई अग्रेज़ी पर हमें विश्वास नहीं। कुछ देर तो मैं इस औदासीन्य पर झुंझलाता रहा, परन्तु धीरे-धीरे मुझे यह समझ में आ गया कि अंग्रेज़ी में मैं जो अपने आपको कालेज में समझता था, वह मैं हूं नहीं। इसलिये मैंने अंग्रेज़ी

में लिखना छोड़ दिया, और अब मैं अंग्रेज़ी में एक अच्छा पत्र भी नहीं लिख सकता।

दूसरी बात मुझे यह दिखाई दी कि बिज़नेस की हिन्दुस्तान में वह क़द्र नहीं, जो विलायत में होगी। यहां तो तंग बदबूदार गलियों में झूठ और फ़रेब का बाज़ार गर्म है। और जिस आराध्य द्रव्य के लिये यह संग्राम छिड़ रहा है, उसका बड़ा हिस्सा चुपके से योरोप और जापान के व्यापारियों की जेब में जा पड़ता है। थोड़े दिनों में ही मैं इतना तंग आ गया कि सदा इसी सोच में पड़ा रहता कि किस तरह इस जाल से निकल सकूँ। इसी विपता में मेरे बाल झड़ने लगे और एक ऐनक की भी आवश्यकता आ पड़ी।

यही दिन थे, जब कि मैं अपने दोस्तों के साथ किश्ती का मज़ा न ले सका था। जिस समय सूर्य की किरणें झील के स्वच्छ पानी पर नाचती होंगी और मेरे मित्रों के कूदने से डरी हुई मछलियां अबरक की तरह चमचमाती हुई भाग जाती होंगी, उस समय मैं बिज़नेस के क्षुद्र झंझटों से घिरा हुआ न जाने क्या-क्या सोचा करता था।

ख़ैर, समय बीत गया। मेरी शादी हो गयी सौभाग्य से एक ऐसी लड़की के साथ जो कबूतर के समान कोमल और शैतान है। उसकी मीठी मुस्कराहट ने मेरे दुःखों को गठरी में बांधकर जल में बहा दिया। अब हम फिर दोनों इकट्ठे बोटिंग के लिये जाने लगे। मित्रों ने भी कमला को देखकर मेरा अपराध क्षमा कर दिया।

यद्यपि अपने गुज़ारे लायक मैं कमा लेता हूं, फिर भी साहित्य के स्वप्न अब भी आते रहते हैं। बिज़नेस मुझे हर प्रकार के व्यक्तियों के पास ले जाता है, और मुझे उनकी प्रवृत्तियां जांचने का अवसर मिलता है। बाज़ारों में घूमते हुए जो कुछ मैं देखता हूँ, वह बहुत कम लेखक देख पाते हैं—यही कारण है कि हमारा साहित्य हमारी वास्तविक ज़िन्दगी का चित्र नहीं खींच पाता। एक-एक गली मुझे एक नई कहानी का प्लाट दे जाती है, लेकिन मेरे पास लिखने का अवकाश नहीं होता। कोई समय आवेगा जब मैं अपना मास्टरपीस लिखूंगा, और मास्टरपीस में फ़ालतू रोमांस को स्थान न होगा।

एक दिन सुबह जब हम इकट्ठे हुये, तो एक अपरिचित व्यक्ति भी हमारी टोली में आया हुआ था। देखने में वह मदरासी युवक जान पड़ता था। उसका कद लम्बा और शरीर की बनावट सुन्दर थी।

पहली नज़र में वह मुझे अच्छा लगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। पहले पहल मैंने तो यही अनुभव किया कि हमारी आज़ादी में कुछ रुकावट सी आ गयी है। मिस्टर पिल्लै अंग्रेज़ी के सिवा हमारी और कोई भाषा नहीं समझता था, और अंग्रेज़ी का भी वह बिलकुल अंग्रेज़ों की तरह बोलता था। यों तो हम भी आम अंग्रेज़ी का इस्तेमाल करते हैं पर उसके साथ बात छेड़ने की हिम्मत किसी को न होती थी। यदि कोई बात छिड़ जाती, तो वह भी कुछ कह देता था, नहीं तो अधिकतर चुप ही रहता था। उस दिन हमें इतना ही मालूम हुआ कि वह बंगलौर के किसी कालेज में फ़िज़िकल डायरेक्टर (व्यायाम-शिक्षक) है और काश्मीर की सैर के लिये साईकिल पर चक्कर लगा रहा है।

उसने प्रतिदिन आना आरम्भ कर दिया। परन्तु जो पंजाबी भाषा न समझता हो और पंजाबी नौजवानों की टोली में फंस जाय, उस पर आफ़त आने में देर नहीं लगती। और फिर जब आदमी खुद भी अजीब सा हो। नहाना शुरू करे तो नहाता ही जावे, किश्ती में लेटे तो उठने की सुध नहीं। हम लोगों को उसका स्वभाव समझ में नहीं आता था। मेरी समझ में वह मेरी पत्नी पर रोब जमाने की कोशिश करता था।

इसी बीच मामला और भी दिलचस्प हो गया। एक दिन हमारा 'कप्तान' एक और व्यक्ति को साथ ले आया। मिस कश्यप अभी-अभी आक्सफ़ोर्ड से शिक्षा लेकर आई थी। हमें किश्ती चलाते देखकर उसका भी मन ललचा आया था। उसके आने पर हम सब बहुत प्रसन्न हुये। मैं इस कारण कि प्रारम्भ से ही वह मेरी पत्नी के घुंघराले बालों की तरफ़ आकर्षित हो गयी थी। साथ ही दूसरी लड़की के आ जाने से समाज की आलोचना का डर भी कम हो गया। हमारी पार्टी में मिस कश्यप ने दुगनी जान डाल दी। उसकी देखादेखी मेरी स्त्री ने भी कस्ट्यूम पहनकर नहाना शुरू कर दिया। 'कप्तान' साहब सुबह चाय का सामान लाने लगे। पहले तो हम गगरीबल तक ही जाते थे, अब नगीन और चारचिनार तक के चक्कर लगाने लगे। जोश इतना बढ़ा कि हमारी टोली बकायदा एक क्लब का रूप धारण करने लगी। पहली मीटिंग में ही पास किया गया कि दस-दस रुपये देकर एक 'डाइविंग बोर्ड' तैयार कराया जाये। साथ ही एक ड्रामा खेलने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई।

❀ ❀ ❀

परन्तु हमारे देश में ऐसी बातें मुश्किल से निभ पाती हैं। थोड़े दिनों में ही हमें महसूस हुआ कि मिस कश्यप की खास बातचीत मदरासी बाबू से ही रहती है। पहले वह प्रतिदिन प्रातःकाल मेरी धर्म-पत्नी के बालों को छेड़ा करती थी, परन्तु अब वह उस ओर ध्यान भी न देती थी। जैसे ही हम झील में किश्तियां ठहराते, दोनों आपस में फुसफुसाना आरम्भ कर देते। बहुत बार तो वे नहाना भी भूल जाते। यद्यपि इसका हमारी पार्टी में कोई असर नहीं होना चाहिये, फिर भी हमारा मज़ा किरकिरा हो गया, जैसे हम अपने ही घर से बाहर निकाल दिये गये हों।

सबसे पहले हमारा 'कप्तान' ऊब गया। मिस कश्यप की खातिर वह अब भी चाय लाता था। उसकी ख़ातिर उसने हमारा चिल्ला-चिल्लाकर गाना भी बन्द करा दिया था और मुझे सिगरेट तक पीने से मना किया था। जो मनुष्य इतनी ताब लाये, वह उस हद की लापरवाही कितनी देर तक सह सकता है ?

एक दिन हम चप्पू रखकर बैठे थे, तो मैंने उन दोनों की बातें सुनी। पिल्ले कह रहा था—"खाली समय में मैं कहानियां लिखा करता हूँ। वह सामने जो महाराज के महल दिखाई दे रहे हैं, उन दो महलों के बीच जो द्वारपालों की ड्योढ़ी है उसके बारे में मैंने एक कहानी सोची है।"

मिस कश्यप ने सराहना से खिलकर मेरी ओर देखा—"है न शानदार बात ? मैं पहले ही बूझ चुकी थी कि पिल्ले लिखते होंगे !"

मैंने कुछ आश्चर्य प्रगट करते हुये पिल्ले की ओर उन्मुख होकर कहा—"सच ? क्या आपकी कोई कहानी छपी भी है ?"

"नहीं, मेरे कुछ लेख छपे हैं, परन्तु मैं कहानियों को जमा करके एक अलग पुस्तक तैयार कर रहा हूँ। यह कहानी जो मुझे अब सूझी है—उस डयोढ़ी के बारे में—वह शायद मेरी सर्वोत्तम कहानी होगी।"

एक साथी ने बात काटते हुये कहा—"मिस्टर पिल्ले यह भाई साहब खुद भी कहानियां लिखा करते हैं।"

ऊपर से मैंने उसे टाल दिया, किन्तु भीतर ही भीतर मैं इस संकेत पर प्रसन्न था—"हां मैं भी लिखने की कोशिश करता हूँ, पर मैं अधिकांश लेखकों का रवैया नहीं पसन्द करता।" इसके बाद मैं एक लम्बा सा भाषण दे गया, जिसमें मैंने साधारण भाव से पिल्ले को यह जतलाने की कोशिश की कि जो मनुष्य अंग्रेज़ी के अलावा और कोई भाषा नहीं जानता और जिसे कभी ग़रीब हिन्दुस्तानियों में रह कर उनकी असली हालत देखने का अवसर नहीं मिला, उसे कहानियाँ लिखने का कोई हक़ नहीं। "महलों के बीच की डयोढ़ी—उसकी बाबत आप क्या कहानी रच सकते हैं, सिवाय इसके कि कोई शाहज़ादा और कोई शाहज़ादी एक दूसरे से प्रेम करते थे। क्षमा करना, इन रोमांटिक कहानियों का समय अब बीत गया। भारतीय जीवन में प्रेम-प्रलाप का कोई स्थान नहीं है, यह आप जानते हैं?" मेरी बात का उत्तर यह मिला कि दोनों चुपचाप पानी में कूद गये।

उस दिन शाम को सैर करते हुये कप्तान से मुठभेड़ हुई। मुझे देखते ही उसने कहा—"मैंने मिस्टर पिल्ले का आना कल से बन्द कर दिया है।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा किया।"

दूसरे दिन से दोनों ही ने आना छोड़ दिया। हमारा कई दिनों से टूटा हुआ सिलसिला धीरे-धीरे फिर बनना शुरू हो गया। हम इस क्षेपक को जल्दी ही भूल गये।

❀ ❀ ❀

शादी से पहले मुझे ज्योतिषी ने बताया था कि मेरा भाग्य शादी के बाद चमक पड़ेगा। बिज़नेस के लिहाज़ से तो यह भविष्यवाणी ठीक ही निकली। इस साल मुझे रियासत के कुछ ठेके भी मिल गये। इनमें से एक काम था उसी ड्योढ़ी के, जिसने पिल्ले को कहानी का कथानक दिया था, बीच की सड़क की मरम्मत कराना। इस काम में मेरी सहायता करने के लिये टैक्सास का एक साहब भी आया हुआ था। दिन में करीब पचास मज़दूर पत्थर कूटते, रेत छानते और तारकोल खौलाया करते। उनकी ओर देखकर मेरा हृदय पिघल जाता। कभी-कभी तो मैं उनके विचार में इतना मग्न हो जाता कि स्वयं महाराज को मोटर में गुज़रते हुये देखकर अभिवादन करना भी भूल जाता। केवल पांच आने पैसे के लिये यह बेचारे दस घंटे काम करते हैं। खौलती हुई तारकोल का धुँआ, तपी हुई रेत और जलती हुई धूप — यह सब कुछ इनको इस संजीदगी से सहना पड़ता है, जैसे एक अमीर को भरपेट मेहमानी। इनकी दरद-कहानी पर कौन कान देता है....

कभी-कभी मैं एक-टक उस ड्योढ़ी की ओर देख कर सोचा करता कि पिल्ले ने इसमें से कहानी के लिये क्या सहारा पाया होगा, तब मेरी दृष्टि के आगे आ खड़े होते एक शाहज़ादा और एक शाहज़ादी, शाहज़ादी इस महल में और शाहज़ादा दूसरे महल में अर्थात मिस कश्यप एक में और मिस्टर पिल्ले दूसरे में....इससे आगे पिल्ले को दृष्टि कहां पहुँची होगी ? क्या ड्योढ़ी के बीच में से जाने वाली सड़क को

कूटने वाले इन अभागों का उसे ध्यान आया होगा ? कभी समय आवेगा, जब मैं इन लोगों की हालत का नकशा पिल्ले और उसके जैसे दूसरे कथाकारों के सामने रखूँगा।

साहबों के आगे-पीछे फिरने का मुझे अभ्यास नहीं, परन्तु हमारे भाइयों में .खुशामद की योग्यता इतनी भरी हुई है कि मुझे भी कभी-न-कभी अपनी इच्छा के विरुद्ध चलना ही पड़ता है। ज्यों ही दूसरे ठेकेदारों ने देखा कि टैक्सास का साहब मुझ पर इतना मेहरबान है, त्यों ही उन्होंने उसको दावतें देना शुरू कीं। मेरे लिये इसके सिवाय कोई चारा न रहा कि उसे कम से कम चाय के लिये घर पर बुलाऊं।

मेरे ड्राइंग रूम को देखकर कोई यह शक नहीं कर सकता कि इसकी सजावट किसी अनजान हाथों ने की है। मेरा सारा प्रयत्न इस कमरे को आदर्श ड्राइंग रूम बनाने का होता है। इसमें मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देख सकता, जो मुझे अरुचिकर हो। मेरे जैसे आदमी के लिये जिसका अधिकांश समय दुनियां की दौड़-धूप में लगता हो, एक ऐसा कोना नितान्त आवश्यक है, जिसमें घुसते ही मन को पूर्ण शान्ति मिले। टैक्सास वाले साहब पर भी मेरे कमरे का कम गहरा असर नहीं पड़ा। चाय के बाद करीब सब बत्तियां बुझा कर ग्रामोफ़ोन पर बीथोवन और मोज़ार्ट का संगीत सुना। इस सबका फल यह हुआ कि साहब में और मुझ में घनिष्टता हो गई।

मैंने साहब को सलाह दी कि मैं उसे गुलमर्ग दिखा लाऊं। उसने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। दूसरे दिन हम उसकी कार में दो दिन के लिये गुलमर्ग चल दिये।

गुलमर्ग से तीन मील नीचे ही मोटर छोड़नी पड़ती है। बाकी अढ़ाई हज़ार फुट की चढ़ाई घोड़े पर तै करनी होती है। पहले तो ज्यों ही मोटर दिखाई देती थी, त्यों ही कुली और घोड़े वाले उस पर टूट पड़ते थे, पर उस दिन ऐसी कोई घटना नहीं घटी। सिपाही ने स्वयं ही घोड़े ला दिये। कुली का प्रबन्ध साहब के बेहरे ने कर दिया। जैसे ही घोड़ों ने पहाड़ी सड़क पर कदम रखा, सामने तोश मैदान की चोटियों पर बर्फ़ का सफ़ेद फ़र्श, उसके नीचे चीड़ के घने जङ्गल और फ़िरोज-पुरी नाले का शोर करता हुआ जल आंखों के आगे घूमने लगा। साहब एकटक इस अनुपम दृश्य को देख रहा था, किन्तु मैं अपने आपको काबू में न रख सकता था। मेरा जी होता था कि मैं उसे गुलमर्ग की हर एक खूबी से फ़ौरन परिचित करा दूँ। इसी के वर्णन में मैंने "कुमारसम्भव" के हिमालय की स्तुति के दो एक श्लोक भी सुना डाले। साथ ही मैंने यह जतला दिया कि सामने के जङ्गलों में शिकार और मछलियां पकड़ने का भी अच्छा इन्तज़ाम है। यह खबर उसके लिये अधिक दिलचस्प साबित हुई।

गुलमर्ग पहुँचकर मैं उसे अपने एक मित्र की कोठी में ले गया, जहां मुझे विश्वास था कि मेरे मेहमान को खूब आराम मिलेगा। बरामदे में कुर्सियां डालकर हम लोग बियर का एक-एक गिलास लेकर असबाब का इन्तज़ार करने लगे। जब कुली आ पहुँचे तो खानसामा ने सामान उतरवा लिया। दोनों कुली थककर पसीना पोंछने के लिये बैठ गये। मैं उन्हें पैसे देने के लिये उठा, किन्तु साहब ने ज़ोर दिया कि वही पैसा देगा। उनके पास पहुंचकर उसने मुझे पुकार कर पूछा—"What shall I pay these deviles?" (इन पाजियों को क्या देना होगा)।

एकाएक एक कुली ने कड़ककर उसी भाषा और लहज़े में उत्तर दिया—"हमारा रेट पांच आने है।" साहब सिटपिटा गया। मैं भी अचम्भे में उठ खड़ा हुआ। काश्मीरी लिबास में मिस्टर पिल्ले हाथ निकाले खड़ा था। उस वक्त मैंने उधर से मुंह फेर लेना ही अच्छा समझा।

साहब ने एक रुपया निकालकर पिल्ले को दे दिया, परन्तु वह हंसकर कहने लगा—"अगर इसमें चार आने और डाल दो, तो मेरा साथी अपना लाइसेंस नया करवा सकेगा।"

साहब ने एक और रुपया फेंक दिया। पिल्ले ने मुस्कराकर सलाम किया और दूसरे कुली की बांह में बांह डालकर नीचे उतर गया।

साहब ने मुझसे पूछा—"यह अजीब कुली कौन हो सकता है?"

मैं कंधे हिलाकर हंस दिया, पर मेरी आंखें दूर तक पिल्ले का पीछा करती रहीं। उस कुर्सी में बैठे हुये मैंने अपने आपको बहुत ही छोटा महसूस किया। मैंने निश्चय किया कि हाथ में लिये हुये कामों को निपटाकर एकदम बिज़नेस छोड़ दूँगा।

मैंने सुना है कि वही मिस्टर पिल्ले मलयाली भाषा के एक सुविख्यात लेखक हैं। उनकी कहानियों को देखने के लिये मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ। महलों की उस ड्योढ़ी का नकशा मेरी आंखों के सामने अब घूमता रहता है।

वहां पर झील के साथ-साथ जाने वाली सड़क एकाएक मुड़कर उस ड्योढ़ी में इस प्रकार दाखिल होती है, मानो किसी को वहां शाहज़ादी के आने की उम्मीद हो—मानों किसी को झील के कमल-फूलों से मिस कश्यप के उठकर आ जाने की इन्तज़ार हो !

यदि कलम में ताकत हुई, तो कभी-न-कभी अवश्य इस घटना के विषय में लिखूँगा ।

———

दिल मतलब कलेजा

आज स्टूडियों में पैक-अप वक्त से पहले हो गया। मैंने जल्दी-जल्दी मेक अप उतारा और कपड़े तबदील किये। यह सोचकर खुशी हुई कि साढ़े पांच बजे तक घर पहुँच जाऊंगा। कमला तब तक वहीं होगी। दोनों सिनेमा देखने के लिए इकट्ठे जा सकेंगे।

कम्पनी के एक मुलाज़िम को टैक्सी लाने के लिए कह रखा था। लेकिन उसके आने तक मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी। दो अपरिचित व्यक्तियों ने अन्धेरी स्टेशन तक लिफ़्ट की दरख़्वास्त की। ड्राइवर की तरफ़ से मुतालबा हुआ कि मीटर के भाड़े के अलावा डेढ़ रुपया उसे ऊपर से दिया जाय। इस मौसम में दोनों मुतालबे मुनासिब मालूम पड़े।

फाटक पर दरबान ने गाड़ी का मआयना किया. कहीं [illegible]

परवानगी कोई फ़िल्म आदि बाहर न चली जाय। ड्राइवर को शायद यह दस्तूर पसन्द न था। व्यंग-भरे लहज़े में बोला, "दो डिब्बे फ़िल्म के पीछे कैरीयर में पड़े हैं। वह भी दिखा दूँ?"

उसकी आवाज़ से पता चला कि उसने शराब पी रखी है।

मेरे साथी उस पर खफ़ा हुए। वह गालिबन स्टूडियो ही के कर्मचारी थे। कहने लगे—"गोरखा अपनी ड्यूटी कर रहा है। तुम्हें उसके काम में दखल देने का क्या हक है?" शह पाकर गोरखा भी गरम हुआ। लेकिन मैंने बीच में पड़कर, सुना कर कह दिया कि नशे की हालत में आदमी बच्चे की तरह हो जाता है। कुछ हमदर्दी उसके साथ इसलिए भी हो जाती है कि उसकी मौजूदगी में लोग अपने इखलाकी ऊंचेपन की खाहमखाह नुमाइश करने लगते हैं—खासतौर से यदि वह निचले वर्ग का आदमी हो।

"सुनाओ दोस्त, .खूब ठाठ से पी है न?" मैंने ड्राइवर को आश्वस्त करते हुए कहा।

"थोड़ी पी है साहेब, जास्ती नहीं। तुम फिकर नहीं करना साहेब," उसके अन्दाज़ में वही अक्खड़पन था।

"मगर तुम दारू पीकर गाड़ी चलाते हो, यह कैसी हरकत है?" एक साथी ने उसे फिर डांटा "अगर ऐक्सीडेंट हो गया तो?"

"देखो साहेब" ड्राइवर ने दोनों हाथ स्टीयरिंग से उठा लिये। "देखो कैसा चलता है हमारा गाड़ी? अपना रास्ता खुद देखकर चलनेवाला गाड़ी है, देखो।"

अब तो हम तीनों का दम खुश्क हुआ। इस सड़क पर अजीबो-गरीब ढंग का ट्रैफ़िक होता है। शहर से बाहर का इलाका होने की वजह से यहां मोटर लारी के अलावा गाएं-भैंसें, तरकारी-सब्ज़ी से लदे हुए ठेले, दूध के बहंगे, और भी अनेक प्रकार के यातायात होते हैं। बरसात के कारण कीचड़ की भी कमी नहीं।

"देखो भैय्या" मैंने ड्राइवर से प्रार्थना की, "अन्धेरी स्टेशन तक तुम .खुद ही ड्राइव कर लो। वहां हम उतर जायंगे। उसके बाद गाड़ी बेशक अपने आप चलती फिरे, हमें कोई एतराज़ नहीं।"

"अरे, तुम मरने से इतना डरता है साहेब। एक दिन तो मरना ही है सब कू।"

समझ में न आया क्या जवाब दूँ! इस आदमी का अक्खड़पन जितना मेरे साथियों को बुरा लग रहा था उतना मुझे नहीं और फिर ख़तरे की कोई ख़ास बात भी न थी। यह लोग अपने काम में बड़े होशियार होते हैं। मैंने उससे कहा—

"मास्टर, तुम्हें मौत से डर नहीं लगता?"

"बिल्कुल नहीं। हम कू बस एक चीज का डर लगता है साहेब।"

"किससे?"

"इससे, इस काले कौवे से।" उसने खिड़की से हाथ बाहर

निकाल कर एक राह चलते पुलिस-मैन की तरफ़ इशारा किया। फिर ऊंचे स्वर में पुकारने लगा—

"सलाम सन्तरी साहिब, कुठे जाणार ?"

सन्तरी ने एक क्षण रुक कर उसकी तरफ़ देखा, फिर चल दिया।

"साला" ड्राइवर ने कहा "हम उससे डरता है, वह हमसे घाबरता है।" यह कह कर वह ज़ोर से हँसा।

अन्धेरी स्टेशन के करीब दोनों व्यक्ति उतर गये। मुझसे भी ताकीद की गयी कि इस टैक्सी को छोड़ देना ही बेहतर होगा। लेकिन मैंने उनकी बात न मानी। एक तो वक्त ज़ाया होता, दूसरा इस बेचारे की दिलशिकनी करना भी अच्छा नहीं लगा। मैंने सोचा—नशा उतरते ही बेचारा जाने किस हालत में हो जायगा। उसके यह .खुशी के थोड़े से क्षण मैं क्यों खराब करूं ? इन्हें हासिल करने के लिए न सिर्फ़ उसने पैसा ही खर्च किया है बल्कि दिनदहाड़े कानून तोड़कर अपने आपको भारी खतरे में भी डाला है।

लेकिन जब मोटर फिर चल पड़ी और ट्रैफ़िक में दो एक बार उसने ऊटपटांग की तो मुझे अपने फ़ैसले पर अफ़सोस होने लगा। मैंने सोचा, मध्यम वर्ग का आदमी भी बड़ा अजीब होता है। एक तरफ़ तो वह ज़िंदगी के हर मोड़ पर यूँ फूँक-फूँक कर कदम रखता है जैसे उसकी जान और पोज़ीशन अत्यन्त नाज़ुक और अनमोल वस्तुएं हों। लेकिन दूसरी तरफ़ किसी सामयिक रिंदपने के आवेश में आकर वह दोनों से लापरवाह हो जाता है और इसी में उसको मज़ा भी आता है !

ड्राइवर निचले वर्ग का आदमी है। उसे इस बात की रत्ती भर परवाह नहीं ? यदि इसी समय पुलिस उसे बीस आदमियों के सामने अपमानित करे, उसे गिरफ्तार करके थाने में डाल दे, तो भी क्या ? उसे आगा-पीछा सोचने की कभी गुँजाइश नहीं होती। वक्ती तौर पर जो मन में आए कर लेना यह उसके लिए कोई विलक्षण बात नहीं, बल्कि उसके जीवन का दस्तूर ही है। ऐसा करने में उसे किसी रोमांस या रिंदपने का एहसास भी नहीं होता। कारण यह कि न दुनिया की और न उसकी अपनी नज़र में उसके जीवन की कोई कीमत है। उसकी तौफ़ीक भी छोटी और इसके साथ-साथ उसके ज्ञान का दायरा भी बहुत छोटा है।

अब वह चुप था। मुझे ठीक न लगा। मैंने सोचा, कहीं सुस्त पड़कर ऊंघ न जाय। उसे बातों में लगाये रहना चाहिए।

"चुप क्यों हो गए भाई ?" मैंने कहा।

पहले तो वह कुछ न बोला। फिर अजुर्दा सी आवाज़ में कहने लगा—"देखो साहब, हम पिया है। बहुत कसूर किया है। पर तुम हम कू काहे को हैरान करता है ?"

"अरे भाई, तुम्हें हैरान करने की मुझे क्या ज़रूरत पड़ी है ? मैंने तो यूं ही कहा। अगर तुम्हें बुरा महसूस हुआ तो मुझे माफ़ कर दो !"

थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोला—

"तुम फ़िल्म में काम करता है न साहेब।"

"हां"

"हम देखा है तुम कू । ग़रीब के दिल को पहचानता है तुम ?"

"अरे नहीं भाई, ग़रीब के दिल को ग़रीब ही पहचान सकता है।"

"वह तो ठीक है।"

और फिर कुछ क्षण बाद उसने गाना शुरू किया—

अचानक गाते गाते वह रुक गया और बोला—

"साहेब तुम पूछा था हमकू मौत से डर लगता है कि नहीं। सुनो—सुनो उसका जवाब—"वह फिर गाने लगा—

"जब दिल ही टूट गया
हम जी के क्या करेंगे....जब दिल ही....

समझ गया न साहेब। दिल....दिल का मतलब कलेजा—समझा ?"

इसके बाद वह लगभग आधी दरजन फ़िल्मी गीत सुना गया। पूरा गाना उसे एक भी याद न था। गाते समय वह दाहिना हाथ

खिड़की से बाहर निकाल कर खूब झुलाता। अंतरा निभाने की मुश्किल को आसान करने के लिए वह कभी ब्रेक को और कभी क्लच को ज़ोर से दबा देता। पीछे आने वाली मोटरें उसकी हरकतों से काफ़ी बेज़ार थीं।

"अच्छा गाते हो तुम" मैंने जी कड़ा कर के कहा।

"हम नहीं गाता है साहब, हमारा गाड़ी गाता है। देखो इसका कितना अच्छा आवाज़ है।"

मोटर नई मालूम होती थी। इंजन की आवाज़ वाकई उसकी अपनी आवाज़ के मुकाबले में अच्छी थी।

"तुम्हारी अपनी गाड़ी है?" मैंने कुछ हैरान होकर पूछा।

"नहीं साहब, अपनी तो नहीं है...."कुछ और कहते-कहते वह रुक गया। इस बार उसकी ख़ामोशी ने हवा में कुछ दर्द-सा पैदा कर दिया।

लेकिन अपनी तबयत को बहाल करने में उसे अधिक देर नहीं लगी। वह फिर सुर अलापने लगा। साथ ही बारिश भी फिर ज़ोर पकड़ गई, गाड़ी के सारे शीशे उठाने पड़े। अब उसका गाना और उसके मुंह से निकलता हुआ सस्ते सिगरेट का धुंआ दोनों असह्य थे। मैं उकता गया। जब भी सामने से कोई गाड़ी आ जाती मैं बेबस होकर उसे "सम्हल के भाई, सम्हल के" कहने लगता।

इस बात से वह चिढ़ गया शायद। एकदम ही मेरी तरफ़ मुंह मोड़कर बोला—

"साहेब, तुम को बताऊँ कैसे होता है एक्सीडेंट ? देखो, तुमको एक्सीडेंट करके बताता हूँ।"

पेश्तर इसके कि मैं कुछ कह सकता, उसने एक भारी मूर्खता कर डाली।

बारिश बम्बई में आती भी बड़ी तेज़ी से है और रुक भी एकदम जाती है। पहली बूंद पड़ते ही लोग भाग कर कहीं आश्रय लेते हैं, और जहां रुकने के आसार दिखाई दिए फ़ौरन फिर सड़कों पर निकल पड़ते हैं, जैसे कुछ हुआ ही न था। हम अब सांताक्रुज के करीब पहुँच चुके थे। सड़क पर लोगों की चहल-पहल फिर शुरू हो गई थी। तीन नौ-जवान, जिन्होंने खाकी वरदियां पहन रखी थीं और जिनके कंधों पर लटकती हुई पेटियों से ज्ञात होता था कि बस-कंडक्टर हैं, आसपास के कीचड़ को लांघते हुए सड़क पर आ रहे थे। ड्राइवर ने आव देखा न ताव, मोटर उन पर चढ़ा दी।

"अरे यह क्या कर रहे हो ?" मैंने हड़बड़ा कर कहा। मेरे मन में उस क्षण उसके लिए सख्त घृणा पैदा हो गई। लेकिन कम्बख्त ने जो भी किया ऐसी सफ़ाई से कि मैं दंग रह गया। इधर एक कंडक्टर को ठोकर लगी और उधर गाड़ी के चारों पहिये जाम हो गए। कंडक्टर को भी बस मामूली सा ही धक्का लगा, जैसे मोटर ने नहीं, किसी आदमी ने पीछे से आकर दिया हो। फिर भी तीनों कंडक्टर सख्त घबरा गए और मुड़ कर हमारी तरफ़ हैरत भरी नज़रों से देखने लगे। ड्राइवर बड़ी ढिठाई के साथ उनको निगाहों का मुकाबला करता रहा, जैसे कह रहा हो "हां, मैंने जान-बूझकर तुम्हें टक्कर मारी है। अब देखता हूँ तुम मेरा क्या बिगाड़ लोगे ?" यह भी एक विचित्र परिस्थिति थी। टेक्सी के तमाम शीशे चढ़े हुए थे, इसलिए कंडक्टरों की समझ में नहीं आ रहा

था कि ड्राइवर से कुछ कहें तो किस प्रकार? और खामोश रहना भी वह न चाहते थे। धक्का कोई ऐसा ज़ोर का न लगा था। साथ ही कुदरत का एक करिश्मा यह भी हुआ कि जिस वक्त यह टक्कर लगी ऐन उसी वक्त दाएँ हाथ से एक डबल-डेकर बस डिपो में से निकली और बिल्कुल करीब से क्रास कर गई। इस कारण बेचारे कण्डक्टर और भी नरम पड़ गए थे कि शायद ड्राइवर से बचाव करते-करते धक्का लग गया हो। लेकिन इसके विपरीत ड्राइवर जिस उद्दण्डता से उनकी तरफ़ देख रहा था, उससे ज़ाहिर था कि जानबूझ कर उनका अपमान किया गया है। उनकी इस शशोपंज का शराबी खूब मज़ा ले रहा था। यकीनन ऐसी धूर्तता उसने पहली बार नहीं की।

काफ़ी देर तक रुक कर और अन्त में सिर को यूं हिलाकर जैसे कह रहा हो, "अच्छा अगर मेरे खिलाफ़ कारवाई करने की तुम्हारे अन्दर बिल्कुल हिम्मत नहीं है तो मैं चलता हूँ"—ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ाई। शीशे को नीचे करता हुआ वह मुझ से कहने लगा—

"इसकू बोलते हैं साहेब एक्सीडेंट। अभी तुम हमकू 'सँभल के' सँभल के' मत बोलना, हां?"

मेरी हालत भी उन कण्डक्टरों जैसी ही हो गई थी। एक तरफ़ इस मूज़ी पर गुस्सा आता और दूसरी तरफ़ उसकी ज़िन्दादिली और उसके आत्मविश्वास को देखकर तबीयत खुश होती।

इतना मैंने ज़रूर कहा—

"ऐसा कभी न करना चाहिए भाई"

"काहे को ?"

"मोटर वाले को हमेशा पैदल चलने वालों की इज़्ज़त करनी चाहिए।"

"काहे को ?"

"क्योंकि वह ग़रीब होते हैं।"

एक एक्टर से उसे ऐसे तर्क की उम्मीद न थी। बड़े नम्र भाव से बोला—

"यह बात तुम ठीक बोला साहब। हम से बहुत ग़ल्ती हुआ। आज हमारा माथा फिरेला है। तुम हमकू माफ करना। हम से बहुत कसूर हुआ साहेब !" उसने फिर स्टीयरिंग छोड़ दिया और दोनों हाथ जोड़ दिये।

मैंने कुछ जवाब न दिया। कुछ देर चुप रहने के बाद वह अपने आप ही बड़बड़ाने लगा—

"पर वह कण्डक्टर लोग किधर अपने आप को गरीब समझता है। यह तो अपने कू लाट-साहब का नाती समझता है। पेसैंजर लोक को बहुत हैरान करता है यह।"

इस सादगी पर मुझे भी हँसी आई। शराब का नशा इन्सान को कैसे अन्दर बाहर से यक-सां कर देता है। इस हालत में इन्सान जो सोचता है, वही कहता और करता है। शायद रोज़मर्रा के छल-कपट

से तंग आकर ही लोग शराब पीते होंगे, ताकि कुछ देर के लिए इस निरर्थक और अस्वाभाविक बोझ को सिर से उतार फेंके।

जूहू वाली सड़क पर पहुँच कर मैं और भी निश्चिंत हुआ। यहां दिन के वक्त यातायात बहुत कम होता है। साथ ही मुझे उस आदमी पर अधिक विश्वास हो गया था। सोचा, घर पहुँचते ही चाय की एक गरम-गरम प्याली खुद भी पियूँगा और इसे भी पिला दूँगा। मुझे और कमला को तैयार होने में पन्द्रह बीस मिनट लग ही जायेंगे। तब तक इसका नशा उतर जाएगा। फिर हमें दादर तक सही-सलामत पहुँचाना इसके लिए कोई मुश्किल नहीं।

जुहू की शान्त सड़क पर उस वक्त एक अजीब समां बंध रहा था। सड़क के दोनों तरफ़ बारिश का और समुद्र से छलक कर आया हुआ पानी मीलों तक फैला हुआ था। दूर नारियल के पेड़ तेज़ हवा में मस्ती से झूम रहे थे। ड्राइवर ने फिर गाना शुरू किया—"दुनिया रंग रंगीली बाबा!........हर डाली मतवारी है........"

अब इस रसिकता की दाद दिये बिना मैं कैसे रह सकता था? वाकई यह समां इस गीत के सर्वथा अनुकूल था—

अनायास अपने भीतर ग़रीबों की सी सरलता और स्वच्छंदता पा कर मैं भी गुनगुनाने लगा।

मेरी आवाज़ उससे अच्छी थी। लेकिन उसकी आवाज़ अधिक स्वच्छंद थी, और साथ ही उसे अभ्यास भी अधिक था। मिल कर गाने से हम एक दूसरे की खामियों को पूरा करने लगे, और गीत और भी मज़ेदार होता गया—

"अरे, ज़रा खुल के साहेब। शरमाने की क्या बात है। परवाह मत करो किसी साले की......., दुनिया की माँ.......दुनियाँ रंग रंगीली बाबा......."

"अच्छा भाई यूँ ही सही" मैंने अपने मन में कहा और जितने ज़ोर से गा सकता था, गाने लगा। यह गीत ड्राइवर को पूरा याद था, या शायद नशे की रौ में आकर याद निखर आई थी कहा नहीं जा सकता। भरपूर मज़ा आया।

"सुख की नदिया जीवन नैया......."

दो इमारतों के बीच में से ठाठें मारते हुए समुद्र की झलक मिली। दूर पहाड़ी पर बादल यूँ टिके हुए थे जैसे कोई विराट काया वाली काम-धेनु धरती पर अमृत की वर्षा कर रही हो।

राह चलते लोग हैरान हो होकर हमारी तरफ़ देखते, और हँस भी देते थे। मुझे रह रह कर झेंप महसूस होती—किसी पहचान वाले ने देख लिया तो ? बार-बार अपना "मूड" बरकरार करना पड़ता, जैसे मैं कैमरे के सामने खड़ा कोई सीन कर रहा हूँ। और मैंने अपनी कल्पना में उस भविष्य के स्वप्न देखने आरम्भ किये जब हमारा देश सचमुच एक "सुनहरा देश" होगा; जब समाज में ऊँच-नीच के सारे भेद मिट जायेंगे, जब सब मनुष्यों में सच्ची सरल मित्रता का सम्बन्ध कायम हो जायगा, जब हर मेहनत करके पेट पालने वाले इन्सान की "जीवन-नैया" "सुख की नदिया" पर बहेगी, "आशा के पतवार" नैया को हमेशा पार लगाया करेंगे। इस तरह मेरा जोश बढ़ जाता था, और एक "निचले दर्जे" के आदमी के साथ मिल कर गाने की झेंप मिट जाती थी।

अब जूहू की चौपाटी के दर्शन हुए। ज्वार-भाटा ज़ोरों पर था। पानी सड़क तक आया हुआ था। हमारी आवाज़ लहरों के गर्जन में विलीन हो गई। ड्राइवर बोला—

"साहेब, सच-सच बोलना तुम कितना पिया है?"

"क्यों, शराब पिये बिना क्या इन्सान गा नहीं सकता?"

"हम कसम खा कर बोलता है, तुम हम से जास्ती पियेला है।"

"और मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने एक बूँद भी नहीं पी है"—मैंने शराबियों जैसी एक्टिंग करते हुए कहा।

हम दोनों हँस पड़े। थोड़ी देर बाद मेरा मकान आ गया। उतर कर मैंने उसे गाड़ी मोड़ कर खड़ी करने के लिए कहा। लेकिन अपने साथी को इस तरह छोड़ कर चले जाना मुझे अजीब-सा लग रहा था। मैं उसको अन्दर आने की दावत देने के लिए वापस मुड़ा। लेकिन उसके पास पहुँच कर मेरे मुँह से सिर्फ़ यही निकला—"चाय.... पियोगे न भाई।"

"नहीं साहेब तुम्हारा बहुत मेहरबानी।" उसने अपराधी की तरह हाथ जोड़ते हुए कहा, मानों उसे खेद हो रहा हो कि क्यों उसने एक अमीर तबके के आदमी के साथ इतनी अनौपचारिकता बरती। मुझे भी अब संकोच होने लगा।

"मैं....अभी आता हूँ" यह कह कर मैं मकान के अन्दर चला गया।

अन्दर आकर मालूम हुआ कमला जा चुकी है। मैंने नौकर को जल्दी जल्दी चाय बनाने का आदेश किया और स्वयं मुँह हाथ धोने तथा कपड़े बदलने में व्यस्त हो गया।

अभी कुछ मिनट ही गुज़रे होंगे कि मोटर के हार्न की लम्बी और कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ी। मैंने सोचा कि शायद ड्राइवर को मेरी ईमानदारी पर शक होने लगा है। कहीं मैं किसी दूसरे रास्ते खिसक तो नहीं गया हूँ ? सम्भवतः वह सोच रहा था कि मेरा उसके साथ मीठी-मीठी बातें करने का भाव यह था कि मैं उसके साथ चार सौ बीस करूगा। मैंने नौकर से कहा, "जा टैक्सी वाले से कह कि मुझे पाँच-दस मिनट लगेंगे। धैर्य्य करो।"

नौकर उसे यह कह कर वापस आ गया। मिनट दो मिनट के बाद उसने अधिक अधीरता के साथ हार्न बजानी शुरू कर दिया। मैं अब स्वयं दौड़कर बाहर गया। ड्राइवर टैक्सी के बाहर खड़ा था—सूखा पतला शरीर, खाकी क़मीज, खाकी पतलून, और बाल भी खाकी मालूम पड़ रहे थे। मैंने अनुमान किया कि वह गढ़वाल के इलाके का होगा।

"क्या बात है भाई, क्यों इतने अधीर हो रहे हो ?"

"हमारा धंधा ख़राब होता है साहब। हम इधर गाड़ी नहीं रोक सकता।" उसकी आवाज़ से मुरव्वत और नम्रता जा चुकी थी।

"मगर मैंने तो तुम्हें शुरू में ही कह दिया था कि मुझे आगे भी जाना है।"

"कहा होगा साहब, हमकू याद नहीं। हमारा धन्धा खराब होता है। हम नहीं रुक सकता।"

धंधा कैसे ख़राब होता है, मैं न समझ सका। "अच्छी बात है" मैंने भी रुखाई से जवाब दिया, "जैसी तुम्हारी मरज़ी, मगर मीटर पर जो लिखा है वही दूंगा। उसके अलावा जो डेढ़ रुपया तुमने मांगा था वह नहीं दूंगा।"

"मत दो साहब।"

"बहुत अच्छा" मीटर के हिसाब से मैंने उसे भाड़ा दे दिया।

पैसे लेते वक्त उसके चेहरे पर खिन्नता के चिह्न नज़र आए, जैसे उसे इस घाटे के सौदे का अभी-अभी आभास हुआ हो? और वह मेरे मुँह से किन्हीं मीठे शब्दों की आशा कर रहा हो। लेकिन अब मेरा अहंभाव जाग चुका था। उसने मुझे अकड़ दिखाने का साहस किया। अब मैं भी क्यों न अकड़ दिखाऊं। मैंने उसके साथ सज्जनता का व्यवहार किया। यदि चाहता तो कुछ भी दिये बग़ैर उसे अंधेरी स्टेशन पर ही छोड़ देता। उसके दिल में ठेस न लगे, इस ख़ातिर मैंने अपनी जान तक को ख़तरे में डाला। न केवल यह, बल्कि सारा रास्ता उसके साथ हंसता खेलता आया था। क्या उसे इसका कुछ भी लिहाज़ न होना चाहिए।

मैंने मुँह फेर लिया और वह भी मोटर स्टार्ट करके चलता बना।

मैं चकित होकर उसकी ओर देखता रह गया। क्या यह नशा टूटने की निशानी थी अथवा मेरे घर में प्रवेश करते ही उसने फिर बोतल को मुँह लगा लिया था।

एक मधुर याद

एक ज़माना था, जब मैं अपने-आपको एक साहित्यिक आदमी समझा करता था। तब मुझे ख़्याल भी नहीं था कि मैं कभी फ़िल्म-ऐक्टर बन जाऊँगा। पर मुझे अब विश्वास हो गया है कि जिस तरह की व्यवस्था में हम रहते हैं, उसमें पिछले जन्मों के कर्म या प्रकृति-द्वारा प्रदान किये गये संस्कार पर मनुष्य का भविष्य उतना अवलम्बित नहीं, जितना वातावरण की परिस्थितियों और मजबूरियों पर। मैं जब अपने आज तक के जीवन पर दृष्टि डालता हूँ, तो ऐसा लगता है कि मैं हमेशा एक पहाड़ी दरिया में पड़े हुए पत्थर की भाँति ढुलकता रहा हूँ, जिसको पानी न केवल अपनी इच्छा के अनुसार ढुलकाया करता है, बल्कि उसकी शक्ल भी गढ़ता रहता है। ऐसी परिस्थितियों में पत्थर अधिक-से-अधिक यही कर सकता है कि जहाँ कोई भी अच्छी जगह मिले, वहाँ दृढ़ता से अटक जाय, किसी ऐसी जगह, जहाँ पानी का प्रवाह उसको बिलकुल गोल-मटोल ही न बना दे। गोल पत्थर का तो वैसे भी कोई ठिकाना नहीं।

साहित्य से मेरा प्रेम अब भी बहुत है और यदि कोई मुझसे पूछे कि मेरे जीवन में सब से बड़ी महत्त्वाकांक्षा कौन-सी है, तो मैं कहूँगा कवि बनना। किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि यह कभी पूर्ण होने वाली नहीं।

पर इसका यह मतलब नहीं है कि मुझे अपनी अभिनेता की ज़िन्दगी से घृणा है। कदापि नहीं। मैं अभिनय को भी एक श्रेष्ठ कला समझता हूँ और उसमें पूर्णतया कमाल हासिल करने के लिए मेरे विचार में अथक और असीम श्रम की आवश्यकता है। यदि चिढ़ होती है, तो इस बात से कि जिस प्रकार का वातावरण फ़िल्मी-दुनिया का बना हुआ है, उसमें इस प्रकार का परिश्रम यदि असंभव नहीं, तो मुश्किल ज़रूर है। यदि मैं प्रेमचन्द की तरह इस वातावरण से घबरा-कर भागा नहीं, तो इसका केवल यही एक कारण है कि समय के साथ-साथ फ़िल्मी 'वातावरण कुछ-न-कुछ ज़रूर बदला है और अच्छी फ़िल्मों के लिए जनता की माँग अधिक ज़ार पकड़ रही है। पर क्या पता यह मेरी .ख़ुशफ़हमी ही हो।

पर नहीं। कितनी ही बार मेरे साथ ऐसी मधुर घटनायें चरितार्थ होती हैं कि मेरा दिल आशाओं और उमङ्गों से परिपूर्ण हो जाता है। और कम-से-कम कुछ समय के लिए मैं अपनी अभिनेता की ज़िन्दगी से संतुष्ट हो जाता हूँ। कहानी लिखने का अवकाश तो मेरे पास है नहीं, और न मैं यही समझता हूँ कि मेरे पास वह टेकनीक है, जिसकी कलात्मकता से मैं आज से पन्द्रह साल पहले कभी-कभी सुन्दर कहानी लिख लेता था। पर ऐसी ही एक मधुर घटना की कहानी तुम्हें ज़रूर सुनाना चाहता हूँ।

ऐक्टरी ज़िन्दगी में मोटर साइकिल मेरी बहुत दिनों से साथिन

रही है। इसको मैंने १९४७ में ख़रीदा था, और भी सूक्ष्मता से कहूँ, तो इसको मैंने उस दिन खरीदा था, जिस दिन हिन्दुस्तान में आज़ादी आयी थी। और अब जिस तरह हमारी आज़ादी के कुछ पुरज़े अच्छे-मज़बूत और कुछ पुरज़े बिलकुल ढीले हैं, वही हाल इस मोटर साइकिल का भी है। मेरे बहुत सारे मित्र मुझे राय देते हैं कि मैं अब इसको त्याग कर मोटर ले लूँ। पर इस पुरानी साथिन को छोड़ना मेरे लिए उतना ही मुश्किल हो रहा है, जितना कि जवाहर लाल नेहरूजी को कांग्रेस छोड़ना।

गत वर्ष की बात है, मैं एक दिन अपने स्नेही मित्र लेखक कृशन चन्दर के घर से वापस अपने घर की तरफ़ आ रहा था कि अन्धेरी स्टेशन के चौक के पास आकर मोटर साइकिल बिगड़ गयी। क्लच के तार की टाँकी टूट गयी। अब जब-तक उसकी मरम्मत न करवायी जाय, वह चलने में असमर्थ थी। मुझे बड़ी खिजलाहट महसूस हुई। सुबह घर से बिना नहाये- धोये, शेव किये निकल आया था और कपड़े भी कोई ठीक से नहीं पहन रखे थे। कृशन से गप्पें मारते-मारते, वक्त का ख़्याल ही नहीं रहा, और अब दोपहर सिर पर सवार थी। सख़्त गर्मी, और साथ ही लोगों की निगाहों की गर्मी, जो एक फ़िल्म-ऐक्टर की हर भाव-भंगिमा में बड़ी सरगर्मी से दिलचस्पी लेती है। मैं कमबख़्त मोटर साइकिल को मन-ही-मन में सैकड़ों गालियाँ देता हुआ बाज़ार में इधर-उधर भटकने लगा कि उसको ठीक करवाने के लिए किसी मिस्त्री के सुपुर्द करूँ। कई जगहों पर गया, पर वेल्डिंग करने वाला कोई भी नहीं मिला। अन्त में एक आदमी ने बताया कि चौक के पास एक ठठेरे की दूकान है। उस ठठेरे का लड़का किसी वर्कशाप में काम करता था, पर अब बेकार है। अक्सर अपने बाप की दूकान पर बैठा रहता है। वेल्डिंग का काम उसको आता है। आखिर पसीने से तर-बतर उस

लोहे के हाथी को घसीटता हुआ बूढ़े ठठेरे की दूकान पर पहुँचा। कुछ तमाशबीन लोगों की उन्मत्त भीड़ मेरे पीछे-पीछे थी।

बूढ़े का लड़का दूकान पर बैठा दालदा का टीन कूट रहा था। मुझे उसने एक अजीब तरह की लापरवाही से देखा। मेरे कहने को भी उसने एक अजीब तरह की लापरवाही से सुना। फिर मोटर साइकिल को हाथ लगाये बग़ैर कहने लगा—इसको एक साइड पर करके उधर छोड़ दो। दो घंटे बाद आकर ले जाना।—यह कहकर वह फिर अपनी दूकान पर जा बैठा, और टीन कूटने लग गया।

एक तो मैं पहले ही परेशान था, दूसरे मुझे उसका व्यवहार वैसे भी अच्छा नहीं लगा। मुझे उसकी योग्यता पर भी शक होने लगा। फिर दालदा के टीन को टाँका लगाना और बात है, और मोटर साइकिल के क्लच को टाँका लगाना और बात। पता नहीं, उसके पास वेल्डिंग करने का ज़रूरी सामान भी था या नहीं। अपनी तसल्ली के लिए मैंने उससे बार-बार सवाल पूछे, पर उसने किसी का भी ठीक-ठीक जवाब नहीं दिया। बस इतना ही कहता—हाँ, हाँ, हो जाएगा। दो घंटे के बाद आकर ले जाना।

यदि मेरे पास मोटर साइकिल वहाँ छोड़ने के सिवाय दूसरा कोई चारा होता, तो शायद मैं उसको एक दो खरी-खरी ज़रूर सुनाता। पर विवश था। मैंने मोटर साइकिल उसके बताये हुए स्थान पर टिका दी, और जाने के पहले उससे पूछा—पैसे कितने लोगे?

उसने फिर एक अजीब लापरवाही से हँसकर जवाब दिया—दो रुपये दे देना और क्या!

मैंने अपने को बड़ा अपमानित महसूस किया। इस बात पर परदा डाल देने के ख़याल से मैंने ज़रा रोबदार अन्दाज़ में, ताकि तमाशबीन सुन लें, उससे कहा—देखो, दो घंटे बाद आना तो हमारे लिए मुश्किल होगा। तुम ठीक कर रखना। हम शाम को पाँच-छः बजे आकर ले जायेंगे।

अपने काम से दृष्टि उठाये बिना ही उसने 'अच्छा' कह दिया। और मैं चौक की तरफ़ वापस चल दिया। उम्मीद थी चौक पर टैक्सी मिल जायेगी, पर वह उम्मीद भी पूरी नहीं हुई। नज़दीक ही बस-स्टाप था। मन में आया कि वहाँ जाकर खड़ा हो जाऊँ। कोई लम्बी लाइन नहीं थी। पाँच-दस मिन्टों में कोई बस आती ही होगी। पर साथ ही मन में यह भी हो रहा था कि तमाशबीन क्या कहेंगे। एक कामयाब फ़िल्म ऐक्टर के लिए तो मोटर साइकिल पर बैठना भी शोर-शराबा होनेवाली बात है। उसके पास तो एक शानदार मोटर होनी चाहिए। फिर, बस की लाइन में जा खड़ा होना?........नहीं....नहीं........यह तो तमाशबीनों के लिए बड़ी निराशा-जनक बात है। क्या पता, मेरे बस-स्टाप पर जाकर खड़े होते ही फ़िक़रेबाज़ी शुरू कर दें। मन करते हुए भी मैं बस-स्टाप पर जाने की हिम्मत न कर सका। बस आयी और चली भी गयी। पर मैं सोचता ही रह गया।

इतने ही में ख़्वाजा अहमद अब्बास की गाड़ी अकस्मात ही आ निकली और अब्बास ने मुझे देख लिया। मेरी जान में जान आयी और मैं उसकी गाड़ी पर सवार हो गया। लेकिन यह भी कुएँ से निकलकर खाई में गिरने वाली कहावत साबित हुई। अब्बास को शायद उस दिन किसी साथी की बहुत ज़रूरत थी। घर पर छोड़ देने की बजाय वह मुझे सारा दिन अपने साथ-साथ लिये फिरा। कभी एक स्टुडियो, कभी

दूसरे; कभी लेबोरेटरी, कभी अपने घर। शाम के सात बजे तक मैं उसके साथ ही लटका रहा। मोटर साइकिल का मुझे ख़याल ही नहीं रहा।

कोई आठ बजे के क़रीब जब मैं घर की तरफ़ मुड़ा, तो मुझे मोटर साइकिल का ख़याल आया। अँधेरा हो चला था। शहर के बाहर के इलाके की दूकानें जल्दी बन्द हो जाती हैं। कहीं वह मिस्त्री लड़का मेरा मोटर साइकिल सड़क पर ही छोड़कर घर न चला गया हो। मैंने तुरन्त अँधेरी की ओर रुख किया।

अँधेरी चौक के आस पास की बहुत-सी दूकानें बंद हो चुकी थीं, होटलों को छोड़कर। जब मैं ठठेरे की दूकान के नज़दीक पहुँचा, तो देखा कि उस लाइन की सारी दूकानें बंद हैं और मेरी मोटर साइकिल एक यतीम की तरह सड़क के किनारे खड़ी है। मैं टैक्सी से उतरकर उसके पास पहुँचा। दिन भर धूल-मिट्टी पड़ने से वह तन्दरुस्त लगने की बनिस्बत मुझे और भी बीमार नज़र आई। ख़ैर इस बात की तस्कीन ज़रूरी थी कि उसको कोई उठाकर नहीं ले गया। मैंने क्लच पर ध्यान दिया। उसको दबाकर देखा। क्लच तो वास्तव में लड़के ने ठीक कर दिया था।

मैंने अँधेरे में इधर-उधर देखा, कि किसी तरह लड़के का पता लगाऊँ, उसको पैसे देकर चलता बनूँ। इतने ही में मैंने देखा कि एक ईरानी चायख़ाने से दो लड़के निकलकर मेरी तरफ़ आ रहे हैं, मुझे तसल्ली हुई, इन में से एक वह ठठेरे का बेटा ही था। मैंने टैक्सीवाले को पैसा देकर रवाना कर दिया।

मेरे समीप आकर लड़के ने उसी लापरवाही से कहा—अरे साब,

तुम इतना देर से आया। तुम्हारा वजा से तो हमारा आज बहुत नुकसान हो गया।

—मुझे अफ़सोस है। कुछ ज़रूरी काम थे, देर हो गयी—पर यह मेरी समझ में न आया कि मेरे देर करके आने से उसका ख़ास क्या नुकसान हो सकता था। शायद उसे कहीं जाना हो, न जा सका। मैंने सोचा, मैं एक रुपया उसको ज़्यादा दे दूँ।

पर जब उसने अपने नुकसान की वजह न बतलायी, तो फिर मेरा दिल उसके विरुद्ध गुस्से से भर गया। उसने कहा—अरे साब, तुम्हारा गाड़ी यहाँ सड़क पर पड़ा था। कोई साला टंकी का कैप उतारकर ले गया। अभी हम दो रुपया खर्च करके इसके ऊपर लगाया।

मेरी टंकी की तरफ़ नज़र गयी। मेरी चमकदार खूबसूरत कैप ग़ायब थी, और उसकी जगह एक दूसरी सलेटी रंग की अलमूनियम की कैप लगी हुई थी, जिसने मेरी मोटर साइकिल की रही-सही रौनक भी खराब कर दी थी। कुछ दिन पहले मोबिल आयल की टंकी से भी कैप इसी तरह उड़ गयी थी। मैंने वैसी ही कैप खरीदने के लिए सारी बम्बई छान मारी, पर किसी को भी दूकान पर नहीं मिली। मालूम हुआ कि वह विदेशी कैप अब बिलकुल ही अप्राप्य हो गयी है। मुझे विश्वास हो गया कि कैप इस लड़के ने स्वयं ही ग़ायब की है और उसको कहीं बेच-बाचकर पाँच-दस रुपये झाड़ लेगा। और उस पर मुझे यह जता रहा है कि उलटा उसका नुक़सान हुआ है।

तुम्हारा कैसे नुक़सान हुआ, मास्टर? दस-बीस रुपये की मेरी कैप गुम हो गयी और तुम जानते हो कि आजकल बाज़ार में मिलती ही

नहीं । तुम्हारी दूकान के सामने गाड़ी खड़ी थी, क्या तुम उसका ख़्याल नहीं रख सकते थे ?

हम को मालूम था, तुम ऐसा ही बोलेगा । जभी तो अपनी जेब से पैसा ख़र्च करके दूसरा कैप फ़िट कर दिया । हम दूकान पर बैठकर अपना काम करेगा या तुम्हारा गाड़ी का चौकीदारी ?

मेरे मन में आया प्रत्युत्तर में कड़ा जवाब दूँ, पर मैंने अपने-आपको रोक लिया । मैं अकेला था, पराये स्थान पर था । वे दो थे और साफ़ लोफ़र-से लगते थे । पता नहीं, झगड़ा होने की सूरत में और कितने यार-दोस्त उनके निकल आयेंगे । मैंने अपने गुस्से का इज़हार सिर्फ़ इस तरह किया कि क्लच की उजरत के दो रुपये के अलावा दो रुपये उसकी कैप के भी दे दिये । उसने एक बार तो बड़े शाही अन्दाज़ प्रदर्शित करके लेने से इन्कार किया, फिर ले लिये ।

उसकी नीचता मुझे हद के बाहर जान पड़ी । मेरी ख़्वाहिश बस अब यही थी कि जल्दी-से-जल्दी मोटर साईकिल को स्टार्ट करके वहाँ से दूर निकल जाऊँ, उन लड़कों की बेशर्म और गुस्ताख़ आँखों से दूर । बातों के दौरान में तीन चार और लड़के भी इकट्ठे हो गये थे । इस मुल्क में फ़िल्म ऐक्टर होना वाक़ई बहुत बड़ा गुनाह है, मैंने मन में सोचा ।

.ख़ुशक़िस्मती से पहली किक मारते ही मोटर साइकिल स्टार्ट हो गयी । मैं उसका बड़ा कृतज्ञ हुआ, क्योंकि पहले कुछ दिनों से कारबोरेटर साफ़ करने-जैसा हो रहा था, इसलिए पाँच-सात किकें स्टार्ट करने के लिए मारनी ही पड़ती थीं । यदि जल्दी स्टार्ट न होती, तो इन लोगों को उपहास करने का और मौका मिल जाता । एंजिन स्टार्ट होते

ही मैं चलने को हुआ। मुड़कर उनकी ओर देखा भी नहीं। बल्कि बत्ती जलाना भी भूल गया।

कुछ दूर जाकर मैंने बत्ती का स्विच ऑन किया। यह स्विच बहुत दिनों से ढीला हुआ पड़ा था, इसलिए पिछली बत्ती तो वैसे जलती ही नहीं थी और अगली भी जलती बुझती ही रहती थी। लेकिन अब बड़ी अच्छी तरह जल गयी। 'उसका भी मुझे इतमीनान हुआ, वर्ना मुमकिन था कि चौराहे पर सिपाही नम्बर नोट कर लेता, और पन्द्रह-बीस रुपये का नुक़सान और हो जाता।

और कुछ दूर आगे जाकर ऐक्सलरेटर दबाते ही मेरा हाथ अचानक हार्न बजानेवाले बटन से छू गया। यह बटन भी काफ़ी समय से ढीला हुआ पड़ा था और हार्न नहीं बजता था। मैंने ठीक नहीं करवाया था, क्योंकि हार्न बजाने की मुझे आदत नहीं। पर आज हाथ लगाते ही हार्न भी बजने लगा। इसकी आवाज़ अलबत्ता अजीब-सी निकली। पहले इस हार्न की आवाज़ इस तरह की नहीं थी, बड़ी ही बेसुरी और गिड़गिड़ाने जैसी आवाज़ थी, जैसे कोई भूखी भेंड़ बें-बें करती हो और एक अजीब बात और। हार्न की आवाज़ ऐन मेरी सीट के नीचे से निकली, जिसकी वजह से ख़ामख़ाह मेरे बदन में सिहरन-सी पैदा हो गयी, जैसे मैं ही अनजाने में कोई बेजा हरकत कर बैठा होऊँ। ज़ाहिर था कि मिस्त्री के लड़के ने मेरे साथ एक और ग़ुस्ताख़ी की थी। मुझे ग़ुस्सा आया, पर साथ ही मेरे अन्दर बार-बार हार्न बजाने की बचकानी ख़्वाहिश भी पैदा हो गयी और जब सीट के नीचे से आवाज़ निकलती, तो मुझे हँसी आ जाती।

और कुछ दूर जाकर मुझे महसूस हुआ कि एंजिन आज बहुत ही अच्छा चल रहा है। मैंने सोचा, रात का समय है, हवा ठंडी है, इसलिए

अच्छा चल रहा है। पर फिर मैंने महसूस किया कि चेन के चेन-बक्स से रगड़ने से जो खड़-खड़ पहले सुनायी देती थी, अब बिलकुल बंद है। लड़के ने क्लच का टाँका लगाने के अलावा ज़रूर मोटर साइकिल की और भी थोड़ी-बहुत मरम्मत की है, मैंने सोचा। पर यह सब कुछ मेरे लिए इतना आश्चर्यजनक था कि मैंने गाड़ी को रोक दिया और उसको स्टैंड पर खड़ा करके पुरज़े-पुरज़ें को ग़ौर से देखने लगा।

अब मैंने देखा कि पिछली बत्ती भी जल रही थी। ज़रूर इसकी वायरिंग भी उसने ठीक की होगी। फिर मैंने देखा, मोबिल आयल की टंकी पर भी पेटरोलवाली टंकी की तरह एक सस्ती पर नयी कैप लगी हुई थी। पहले उसपर एक सिगरेट का ख़ाली टीन उलटा पड़ा हुआ था। फिर मैंने देखा, ब्रेक भी कसी हुई है। चेन भी कस दी गयी है। गीयर बाक्स को भी ठीक किया गया है। फिर मैंने सोचा, ज़रा टूल बाक्स तो खोलकर देखूँ। उसमें से कोई औज़ार तो उसने तिड़ी नहीं कर दिया। क्या देखता हूँ कि न सिर्फ़ सब औज़ार ही सही-सलामत हैं, बल्कि वह पेटरोल टैंक की कैप भी, जिसके लिए वह कहता था, गुम हो गयी है, उसमें पड़ी हुई है। मैं बिलकुल हक्का-बक्का हो गया। लड़के ने मुझसे कुल चार रुपये लिये थे। पर ज़ाहिर था कि काम उसने कम-से-कम पन्द्रह-बीस रुपये का किया था। पर क्यों ? यदि किया था, तो बताया क्यों नहीं ? इस तरह मज़ाक़ करने का क्या प्रयोजन ?

अब मेरे दिल में उस लड़के के प्रति भाव बदल गये। एक बेकार, बेरोज़गार कारीगर जो कि मोटरों के एंजिन ठीक करने की बजाय अपनी शक्ति दालदा के टीन कूटने में व्यय करता है, वह इतनी पुरमज़ाक तबीअत का आदमी हो सकता है !

मेरे लिए आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। उसकी मेहनत का

मुश्रावज़ा दिये बग़ैर घर जाना मुझे पाप नज़र आने लगा । मैं उलटकर वापस अँधेरी चल पड़ा ।

रास्ते में फिर एक-दो बार गाड़ी रोकी और उसका निरीक्षण किया कि कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो गया । पर यह भ्रम नहीं था । कल तक मैं गाड़ी को गैरेज भेजकर सर्विस कराने की ज़रूरत महसूस कर रहा था और आज इस तरह मालूम हो रहा था, जैसे गाड़ी अभी गैरेज से सर्विस कराके आयी हो । नहीं मैं उसको ज़रूर पैसे दूँगा और उसके मज़ाक की पूरी दाद दूँगा ।

साथ ही ख़्याल आया कि मैं और नयी मुसीबत तो मोल नहीं ले रहा । क्या पता, वह लड़का अब वहाँ होगा कि नहीं । मुमकिन है, मुझे देखकर उसके साथियों को कोई नयी शरारत सूझ जाय । फिर क्या होगा ? पर मैं रुका नहीं ।

चौक पार करके मैंने देखा कि टीनोंवाली दूकान खुली हुई है । एक मिट्टी के तेलवाली बत्ती जल रही है, और एक बूढ़ा, उस लड़के का बाप, टीन ठोंक रहा है । मैं मोटर साइकिल का एंजिन बन्द करके उसकी तरफ़ चला ही था कि पता नहीं किस तरफ़ से वह लड़का और उसके साथी भी उपस्थित हो गये । लड़का मोटर साइकिल के पास जा खड़ा हुआ और कहने लगा—क्यों साहब, फिर कोई ख़राबी हो गयी क्या ?

मैंने सीधे जाकर उसका दायां हाथ अपने दायें हाथ में ले लिया, और कहा—अरे यार, तुम तो बड़े शानदार आदमी हो । मुझे मालूम नहीं था कि तुमने गाड़ो पर इतना काम किया है । बताओ, मुझे और कितने पैसे देने हैं ?

—कुछ नहीं, कुछ नहीं। सब ठीक है। तुम 'हम लोग' पिक्चर में बहुत फ़स्ट क्लास काम करता है, बस!

—मगर मैं तो तमाम वक्त यह सोचता रहा था कि तुम मेरा मज़ाक़ उड़ा रहे हो।—मैंने कहा।

—ऐक्टर लोग के साथ थोड़ा मज़ाक़ करना मांगता है।

मैंने बड़ी कोशिश की कि वह मुझसे पैसे ले ले। पर उसने एक न सुनी। बल्कि उसकी मंडली मुझे साथ ही के ईरानी चायख़ाने में ले गयी। वहां उन्होंने मुझे चाय पिलायी, और फ़िल्मों के बारे में, ऐक्टरों और एक्ट्रेसों के बारे में बड़े मज़ेदार सवाल पूछते रहे। मेरी उनसे अब सारी झेंप-झिझक मिट गयी थी और एक अपूर्व मज़ा मिल रहा था। अब तक मैं मज़दूरों के प्रति कुछ और ही विश्वास मन में लिये बैठा था। बेकारी की हालत में भी मज़दूर इतना हँसमुख, .खुशदिल, ऐसा बादशाह हो सकता है, मुझे कल्पना भी नहीं थी।

और यह है मेरी ऐक्टरी ज़िन्दगी की वह मधुर याद। यदि कहानी लिखने की कला को भूल न गया होता, तो मैं इसका बहुत ही रोचकता से वर्णन कर सकता था।

ललित लेख

रमज़ान

रमज़ान फिर लौट आई है। स्थान-स्थान पर ड्राइवरों ने चांद देखने के लिये लारियां रोक रखी हैं। पहाड़ का चांद भी एक अजीब चीज़ है। कोई कहता है, "मैंने चिनारी के नज़दीक देखा था, अब ख़ुदा जाने कहां ग़ायब हो गया है।"

कोई कहता है, "आज तो पहला चांद है, हमने रोज़ा नाहक ही रख छोड़ा।"

कोई कहता है, "अरे नहीं, यह दूज का चांद है। न भी हो तो क्या है? एक रोज़ा अधिक रखने से मर तो नहीं जाओगे?"

किन्तु हमारा ड्राइवर इस बहस में भाग नहीं लेता। उसने अपना रोज़ा सवेरे ही भंग कर दिया था। श्रीनगर से चलते ही पिता जी को फ़िक्र हुई कि रोज़े आ गये हैं और ड्राइवरों के वायदों पर विश्वास नहीं

किया जा सकता । पता नहीं, एक दिन में रावलपिंडी पहुँचा दें या न, प्रायः रोज़ा खोलने वाले पांच ही बजे सब काम छोड़कर खाने-पीने की सामग्री सामने रखकर बैठ जाते हैं । मैं एक बार मुरादाबाद के स्टेशन पर गाड़ी में सवार हुआ । जिस डिब्बे में मैंने प्रवेश किया, उसमें कुछ पठान लोग भी थे । ज्योंही सूरज कुछ नीचे झुका, उनको तबीयत बेचैन होना शुरू हो गई । एक ने दो अमरूद ख़रीदे, उन्हें बड़ी साव-धानी से काटा, नींबू लगाया, कुछ पकौड़े निकाले और फिर इन सबको एक कागज़ में सँवारकर सामने वाले फट्टे पर रख दिया । पट्ठे ने लखनऊ तक किसी यात्री को उस रास्ते से गुज़रने नहीं दिया । एकटक उस कागज़ की ओर देखता रहा । ज्योंही छः बजे, एक फांकी उठाकर मुंह में रख ली । उसके बाद यह था कि रात को दो बजे तक खाने-पीने का दौर चलता रहा । कभी रोटी, कभी गोश्त, इस स्टेशन पर अंडे, अगले पर संतरे, फिर रोटी, फिर गोश्त, इत्यादि ।

सो रमज़ान के दिनों मोमिनों के प्रोग्राम पक्के नहीं होते—विशेष कर ड्राइवरों के । यदि शाम के चार बजे ही किसी पड़ाव पर मुर्गे की खुशबू आ गई, तो लारी वहीं ठहरा कर सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे । यदि यात्रियों ने हाय तोबा मचाई, तो कह दिया कि खाना यहीं अच्छा मिलता है, तुम भी खा लो । बाद में चाहे मुर्ग की एक टांग पांच आदमियों में बंटे ।

पिता जी तो जानते थे । जो व्यक्ति साठ साल तक मोमिनों को रोज़े रखते देख चुका हो, वह भी आधा रोज़ई हो जाता है । ज्योंही लारी श्रीनगर के बाज़ारों में से गुज़री, पिता जी ने चार आने का गर्मागरम हलुआ खरीदा और पड़ते ही ड्राइवर के आगे कर दिया । रमज़ान, रमज़ान है, लेकिन हलुआ भी तो आखिर हलुआ है । और फिर कल शाम को बादल थे । चांद ने भली प्रकार दर्शन नहीं दिये । कोई कहता

है, "आज शुरू है," कोई कहता है, "कल शुरू होंगे।" कुछ इस प्रकार मन को तसल्ली देकर ड्राइवर ने हलवा घर कर लिया। अब हम उसकी चिकनाहट के बिरते मज़े से फिसलते जा रहे थे। उसी दिन शाम को घर पहुँच गये।

चांद के साथ सम्बन्ध होने के कारण रमज़ान में भी चांद का कुछ रोमांस छलक आता है। पहले रोज़े के दिन हमेशा बहस होती है कि चांद नज़र आया या नहीं। पत्र-पत्रिकाओं में तारीख़ चाहे महीनों पहले से छप चुकी हो, फिर भी लोग जब तक चांद को अपनी आंखों से न देख लें, उन्हें विश्वास नहीं होता कि रोज़े आ गये हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी छतों पर चढ़कर नज़रों के पतंग उड़ाते हैं। किन्तु ईद के चांद का आगमन होने पर यह बेचैनी एक दूसरा रूप धारण कर लेती है। एक शख़्स भी यदि यह कह दे—"हां, चांद नज़र आ गया है," तो प्रतीक्षकों की निगाहें आकाश से हटकर ईद के साज-ओ-सामान की ओर जाती हैं। कल के एक दिन में सारे साल के लिये आनन्द और उल्लास का स्मृति-पुंज संचित करना है। कल का एक-एक क्षण उन्माद से भरना है। और यह कितना मुश्किल है।

ईद का अपना वायुमंडल होता है। किन्तु रमज़ान की भी अपनी एक मस्ती है। अगर ईद द्रुतगामी वसन्त है, तो रोज़े शीतकालीन लम्बा सोग है; अगर ईद मिलन की इनी-गिनी घड़ियां हैं, तो रमज़ान विरह का विषम युग है, जिसमें न दिन में जान, न रात को चैन।

मैंने सुना है की कलकत्ते में अब जनता को सुबह सचेत करने के लिये तोप दाग़ी जाती है। हमारी तरफ़ यह नहीं होता। मेरी समझ में तो यह तरीका सहज, शानदार एवं गौरवपूर्ण चाहे हो, कामयाब नहीं। पहला कारण तो यह है कि सबकी नींद एक जैसी नहीं होती। कई, तोप को

जाने दीजिये, चूहे की कुतर-कुतर को सुनकर ही जाग जाते हैं, और कई— मेरे जैसे—बीस क़िस्म के .ख़ुर्राटेबाज़ों के मध्य में सोकर भी सुबह ताज़ा उठते हैं। इस दूसरी किस्म के शरीफ़ज़ादों के लिये क्या तीन मील दूर से एक तोप का फ़ायर काफ़ी होगा ? अव्वल तो कलकत्ते जैसे बड़े शहर में सभी सोने वाले सुन भी न पावेंगे। यदि सुन भी लें, तो भी सभी धर्मनिष्ठ एक से नहीं होते। हमारा शम्भू आपके ऐन सामने बीस कदम के फ़ासले पर खड़ा अपनी तोतानुमा आंखों से आपको टुकुर-टुकुर ताकता रहेगा और इक्कीसवीं आवाज़ पर कहेगा, "बाबूजी, हमका बुलावत हैं ?" ऐसे लोगों के लिये तो दस फ़ायर से भी काम नहीं चलेगा। फिर क्या मालूम, यही सोचकर करवट बदल लें कि शायद लाटसाहब की सलामी हो रही है।

और दूसरा कारण हमारे विरोध का यह है कि यदि तोप ही दग़वाना है, तो क्या फ़ोर्ट विलियम से ही ? क्यों न हर मुहल्ले में पांच-दस मंचल-पटास के गोले दाग़ दो ? क्या यह वही तोप नहीं, जिसकी आग सदियों से मुसलमान वीरों की छातियों पर बरसती रही ? क्या यह वही फ़ोर्ट विलियम नहीं, जिसकी दीवारों के पीछे हमारी स्वतंत्रता की देवी दिल्ली से जकड़कर लाई गई थी और ज़िन्दा दफ़ना दी गयी थी ? फिर एक छूंछा, नकली गोला दग़वाने की कीमत भी हमीं दें। वाह ! सचमुच इतनी बेमुरव्वती हमारे इतिहास में कभी देखने में न आई थी। आखिर गोला किस का है, तोप किस की है ? लेकिन इन पाश्चात्यकों की सभ्यता ही कुछ ऐसी है। इनके डाक्टर भी तो अपने चचा तक को बिल भेजने में संकोच नहीं करते।

न भाई, हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं है। हम तोप-वोप नहीं दग़वाते। जब मैं छोटा था, तो यह काम अखाड़ेवाले करते थे। अखाड़ेवाले उन शूरवीरों की संतान हैं, जो किसी ज़माने में ढाल तलवार से लड़ा

करते थे, किन्तु अब तलवारें मंहगी हैं और फांसी के तख़्ते का भी डर है, इसलिये गतकों का प्रयोग होता है। पैतरें बेशक वही हैं।

हमारे शहर में ६ या ७ अखाड़े हैं। हर एक अखाड़े का अपना झंडा, मरढ़ियां व ढोल होते थे। जब भी किसी बड़े आदमी के घर शादी-ब्याह हो, या कोई त्योहार हो, अखाड़ेवाले अपनी युद्ध सामग्री लेकर पहुँच जाते थे। ढोल की घमाघम से दिशायें गूंज उठती थीं। वह ग़ज़ब के पैंतरे चलते थे कि नाचनेवाली बाईयां भी दाद दिये बिना न रहती थीं।

रमज़ान के दिनों मोमिनों को प्रातःकाल सचेत करना भी अखाड़े-वालों के ज़िम्मे था। सुबह तीन बजे ये लोग विविध दिशाओं से शहर पर आनन फानन धावा बोल देते थे। क र्र र्र र्र र्र र्र....क र्र र्र र्र र्र र्र....घमाघम-घमाघम-घमाघम। प्रत्येक ढोल दूसरे ढोल को पराजित करने पर तुल जाता था। अखाड़ेवालों की टोलियां हर एक घर के आगे ठहरकर चिल्लाती थीं—"उठो मुसल्मीनों रोज़े रखो-ए...." यदि नगर में एक भी खोजा रह गया, तो उस हल्के के अखाड़ेवालों की मारे शर्म के कई दिन आंख न उठती थी।

बाकी दिन यह लोग मुहल्लों के नलकों पर पहरा देते थे। सभी मोमिन एकसां नहीं होते और न रोज़े सदा सर्दियों में आते हैं। गर्मी में कोई रोज़ा रख के देखे तो जानें। दोपहर को वह प्यास लगती है कि मन फ़ायर ब्रिगेड को बुलाने को दौड़ता है। ऐसे समय में कई छोटे दिल वाले हाथ पैर धोने के बहाने टोटियों के सिरहाने जा बैठते हैं। पहले पाद हस्त प्रक्षालन होता है, फिर इधर उधर की शिस्त लेकर कुल्ले पर कुल्ला चलता है। ऐसे लोगों की निगरानी भी अखाड़ेवाले ही करते हैं।

हमारे मुहल्ले में एक नये फ़ैशन के नौजवान को तम्बाकू की

इल्लत थी। रोज़े के दिनों वह विधर्मी सिगरेट पीनेवालों के पीछे-पीछे उनका छोड़ा हुआ धुँआँ सूँघने के लिये चला करता था। आखिर एक अखाड़ेवाले के हाथों सीधा हुआ।

इन अखाड़ेवालों में एक परले दरजे का रंगीन आदमी था। आर्थिक दृष्टि से बाकी साथियों से कहीं अधिक सम्पन्न था। गलियों में चीनी-शीशे के बर्तन बेचा करता था। उसका मुंह कुप्पी की तरह गोल था। और उस पर मेंहदी से रंगी हुई मूंछें झंडियों की तरह लटकती थीं। इनकी वजह से उसको देखकर सभी लोग हँस पड़ते थे, इसलिये वह उनके हँसने से पहले हँस पड़ता था।

लेकिन था बेचारा बेनसीब। बीबी-बच्चे खुदा के घर पहुँचा चुका था, और स्वयं भी जोड़ के दर्दों के मारे परेशान रहता था। कारोबार भी चीनी के बर्तनों का था, जो आज है, कल नहीं। इसलिये अपनी मूंछों की देखभाल को ही उसने एक व्यसन सा बना रखा था। हर छठे दिन उन्हें रंगता और प्रतिदिन उन्हें घी का पुट देता था।

अखाड़ों पर वह जान देता था, लेकिन गतके में प्रवीण न था। ज्यों ही उस्ताद को सलामी देने झुकता कि प्रतिद्वंद्वी वार कर देते। पैंतरे के हेर-फेर उसकी समझ से बाहर थे। अलबत्ता वह बकता खूब था। अनपढ़ होने के बावजूद घंटों वह अंग्रेज़ी में लेक्चर देता था। किसी न किसी चौराहे पर रात को अवश्य उसकी रौनक बनी रहती।

अब हमारे शहर में रमज़ान के ढोल नहीं बजते। अखाड़ों के लोग सभी बेलचा फ़ौज में भरती हो गये हैं। बेलचा फ़ौज एक प्रकार की मुसलमान सेवा समिति है, जो कुछ वर्षों से कई शहरों में प्रचलित हुई है। खाना खा चुकने के बाद अखाड़ेवाले खाकी वर्दियां पहनकर

कंधे पर बेलचा सजा कर अंग्रेज़ी ढंग की कवायद सीखते फिरते हैं। बेलचा क्यों है, वे नहीं जानते, पर यह अवश्य जान गये हैं कि पैंतरे पुराने हो चुके हैं। लेफ्ट राइट का ज़माना है। ढोल बेचकर बिगुल व ड्रम ख़रीद लिये गये हैं। चीनीवाले ने मुंह मांगी मुराद पायी है। इस फ़ौज में अब वह कारपोरल है। लेक्चर देने के बजाय आर्डर देता है। मौका लगे तो दिन को भी वर्दी पहनकर अपने सिपाहियों से सलाम लेता फिरता है।

अब ढोल-धमाके के स्थान पर दो बिगुल और ड्रम बजते हैं। शोर मचाने की परम्परा को भी त्याग दिया गया है, क्योंकि वह असभ्यता है। शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कारपोरल और उसके बैंड का प्रभावशाली मार्च होता है। सिपाहियों के कदमों की थप-थप अथवा कारपोरल के आर्डरों के अतिरिक्त और कोई अनावश्यक आवाज़ें नहीं उठतीं। केवल कभी-कभी सिपाहियों की परस्पर फुस-फुस सुनाई दे जाती है, मसलन—"तोंद का मारा अपना कदम ठीक रखता नहीं और हमें गालियां देता है।"

इन दो बिगुलों के आगे वह ढोल चीज़ ही क्या थी! एक जापानी है और दूसरी जर्मनी। बजानेवाले भी अभी उस्ताद नहीं हुये। जो-जो स्वर निकालने के लिये बिगुल नामक वाद्य तैयार किया गया है, उन्हें छोड़कर हर प्रकार की आवाज़ें वह निकालते हैं। यदि कोई साधारण स्वर फूट पड़े, तो फ़ौरन उसे दबा दिया जाता है। कभी स्लेट पर खुर्दरी पेंसिल के चिरने की-सी कसक उठती है, तो कभी मेंढकी-सी बें-एं, और ज़ालिम एक साथ भी नहीं बजाते। एक दूसरे की नकल करते हैं। शुरू शुरू में बेलचा प्रबन्धक कमेटी को आशंका थी कि केवल दो बिगुलों से काम नहीं चलेगा। अब सुना है कि कमेटी के कई सदस्य आन्दोलन कर रहे हैं कि बिगुलों को रेल के नीचे

रखकर पिसवा दिया जाय, लेकिन दूसरा पक्ष सहमत नहीं। वह चाहता है कि उनकी पिछली नली बन्द करवाकर उन्हें पियाउ पर लोटे के तौर पर इस्तेमाल किया जाय। अतएव पहला प्रस्ताव पास नहीं हो सका।

ठीक है, रमज़ान के सम्बन्ध में पूरब और पश्चिम का मेल नहीं कराया जा सकता। काश कि वही ढोल बजाने की व्यवस्था फिर लौट आये। बड़ों के तो क्या बच्चों के अरमान फिर पूरे हों। जिन दिनों ढोल बजा करते थे, मेरा भान्जा रमज़ान से एक महीना पहले और रमज़ान के दो महीने बाद तक सारा दिन मकान की सब से ऊपर वाली छत पर बैठा टीन बजा-बजाकर मुहल्ले वालों को रोज़े रखाया करता था—"उठो मुशिल्मानों, रोजे रखा-ओ-ओ-ओ-ए !"

कई डरपोक इस प्रातःकाल के महाघोष से सख़्त घबराते हैं। कईयों को तो मारे डर के सारी रात नींद ही नहीं आती। बेचारे बिगल बजने से आध घंटा पहले ही गली के सिरे पर जा बैठते हैं और आक्रमणकारियों के प्रवेश करते ही निवेदन करते हैं "सलाम-अ-लैक्म, हम जाग उठे हैं, ज़रा और आगे जाकर बजाइयेगा।"

हमारे पड़ोसी भी कुछ ऐसी ही नाजुक तबीयत के थे। रमज़ान पड़ते ही मुरझा जाते। यह नहीं कि वह रोज़ा नहीं रखना चाहते, वह फ़र्माते—रोज़े तो बीस ज़्यादा भी रख सकता हूँ, लेकिन यह कम्बख़्त बिगुल....

एक दिन हमारे घर कुछ अतिथि आ गये, इसलिये मुझे अथवा मेरे भाई को गली के साथ वाले एक ऐसे कमरे में सोना पड़ा, जो कई वर्षों से अप्रयुक्त पड़ा था। रमज़ान के दिन थे, यह हमें याद न

रहा। रात को एक बार नींद खुली, तो क्या सुनता हूं कि पास ही से दबी-दबी आवाज़ें आ रही हैं।

"वह हंडिया भी उठा ला।"

"उसकी क्या ज़रूरत है?"

"पूछ मत, ले आ।"

"और भी कुछ लाऊं?"

"श-श-श-शोर मत कर, जाग पड़ेगी।"

"सब सामान आ गया?"

"आग सुलगा दे।"

"अभी नहीं। ऊपर का सामान भी आने दो।"

"श-श-श-शोर मत कर, जाग पड़ेगी।"

मेरा कलेजा धक से रह गया। हे ईश्वर, यह क्या काण्ड हो रहा है? क्या मैं स्वप्न ले रहा हूँ, या सचमुच चोर घुस आये हैं? इतने में आवाज़ें बन्द हो गईं। शायद स्वप्न ही था, किन्तु चैन न आया। माता जी साथ वाले कमरे में सो रही थीं। भयंकर संकल्प उठने लगे। उस अपरिचित कमरे का वायुमंडल बोझ बनकर छाती पर बैठने लगा। आवाज़ें फिर आना शुरू हुईं—

"ट्रंक में देख।"

"वहां नहीं है।"

"कोट के जेब में देख।"

"यहां रख दे।"

फिर छुरी तेज़ करने की आवाज़ आई। मेरा बदन डर के मारे शल्ल हो गया इतने में किसी वस्तु के कटने की आवाज़ आई। अकस्मात मेरे मुख से चीख निकली, "चो...." दूसरी बार फिर निकली, "चो...."मेरे भाई पर भी शायद यही गुज़र रही थी। मेरी टोह पाकर वह भी पुकार उठा, "चो...."

एक दूसरे का सहयोग पाकर हम दोनों ने उच्चारण शुद्ध किया, "चोर, चोर!"

बस फिर क्या था। साथ के कमरे से माता जी ने भी पुकारना शुरू किया—"चोर, चोर!"

मेहमानों ने चिल्लाना शुरू किया—"चोर, चोर!" पड़ोसियों ने भी वही आवाज़ बुलन्द की। पल भर में मुहल्ले भर में दगड़-धूम शुरू हो गयी। हमारी मौसी का मकान नज़दीक ही था। मौसेरे भाइयों ने दूर से ही चिल्लाना शुरू किया—"फ़िकर न कर मासी हम आ रहे हैं।"

कुत्ते तो ऐसे सुअवसरों की इन्तज़ार में ही रहते हैं, खूब भूँके। सिपाहियों की सीटियां सुनाई देने लगीं। पड़ोसियों ने धक्के देने शुरू

किये। कई दीवारें फांदकर घुस आये। "कहां है चोर, कहां है चोर?"

हमारे एक अतिथि को डर के मारे बदहज़मी की शिकायत हो गई थी, इसलिये बेचारे ग़ुसलखाने में जा घुसे थे। ज्यों ही निकले, बीस आदमियों का शोर हुआ—"वह है, वह है, पकड़ो।"

सब उसी पर पिल पड़े। मौसेरे भाई ने उन्हें चित्त किया और बाकी सवार हो गये। जिस किसी को उनके शरीर का कोई भाग सलामत नज़र आया, उस ने वहीं वार किया। ग़रीब चीखता रहा, "मैं चोर नहीं हूँ, रामभेजामल हूँ।" लेकिन कौन सुनता है? आख़िर पुलिसवालों के आने पर मामला सुधरा। जब होश-हवास ठिकाने आये, तो थानेदार साहब ने अनुसंधान शुरू किया। किसी को कुछ न कहना था। आख़िर पड़ताल होते-होते हम तक पहुँची। हम फिर वैसे के वैसे रज़ाई तानकर पड़े थे।

थानेदार साहब ने जब हम पर जिरह शुरू की, तो जमघट में से हमारे पड़ोसी की आवाज़ आई—"वल्लाह, वह तो हमारे घर की आवाज़ें थीं। हम सेहरी पका रहे थे। वाह साहब, अजीब मज़ाक है। हमारा वक्त टाल दिया और अब हम सारा दिन भूखों मरेंगे।"

ईद नाटक के अन्तिम अभिनय की तरह है और रमज़ान महीने भर की कड़ी रिहर्सल, कष्टपूर्ण होते हुए भी जिसकी एक अपनी शान है।

पूरब के नाई

हमारी पश्चिम प्रियता का एक शोचनीय पहलू यह भी है कि हमारा सभ्य समाज नाइयों से रिश्ता तोड़ रहा है। हम अब उस श्रद्धा और प्रेम से नाईयों के आगे सर नहीं झुकाते, जिससे हमारे पूर्वज सदियों से झुकाते चले आये हैं—विशेषकर नौजवानों में तो यह भाव तरक्की पर है कि नाई का काम केवल हजामत बनाना है। और तो और, जो भद्र पुरुष किसी दूसरे मनुष्य को भद्रपुरुष नहीं समझता, वह उसे नाई कह कर पुकारता है।

ऐसा व्यवहार न केवल नाइयों से ही बेइंसाफ़ी है, बल्कि अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने वाली बात भी है। शायद इसी निःस्नेहता के कारण नाइयों ने हमारे घरों में निर्विघ्न चले आने का अभ्यास छोड़ दिया है। हमें अब स्वयं अपना नाई बनना पड़ता है, या उठकर उनकी केश-शृंगार-शाला में जाना पड़ता है, जो इस देश में हज़ारों की संख्या में खुल चुकी हैं, और खुल रही हैं।

मुझे याद आता है कि बचपन में मैं पिता जी को हजामत कराते समय नाई के साथ हमेशा किसी सुगूढ़, रहस्यपूर्ण, षाड्यंत्रिक वार्तालाप में डूबा हुआ पाता था। और मैं सच्चे दिल से प्रार्थना किया करता था कि "हे ईश्वर। कब वह समय आयेगा, जब मैं भी मुंह में साबुन चुपड़वाने की रस्म अदा करके किसी नाई से ऐसी ही शपथबद्ध मित्रता पैदा कर सकूंगा।" किन्तु समय आने पर मेरी सारी उत्सुकता न जाने कहां चली गयी। अब मुझे लम्बे-लम्बे नामों वाले 'पेरिस' और 'मिनर्वा' हेयर-ड्रेसिंग सैलूनों में जाना पड़ता है, जहां पहुँचकर मेरी आत्मा सिकुड़ जाती है और कलेजा ऊपर को आता है, जैसे कहीं मैं किसी ऐसे शल्य-चिकित्सक के उपचार-भवन में पहुँच गया हूँ, जिसकी शराफ़त पर मुझे विश्वास नहीं है। कौन कह सकता है कि यह सैलून बाहर से क्या हो और अन्दर से क्या ! संभव है कि बाहर एक बीस फ़ुट लम्बे फट्टे पर सुनहरे अक्षरों में "अन्तर्राष्ट्रीय-केश-सुधार-भवन" लिखा धरा हो और अन्दर पड़ी हों दो-तीन मैली कुचैली खाली शीशियाँ अथवा गंजे ब्रशों से सज्जित मेज़। यदि ऐसा नहीं, यदि इससे एकदम उल्टी बात है—अर्थात् संगमरमर की चिलमचियां, स्प्रिंगदार कुर्सियां और बिजली के ब्रश पड़े हैं, तो आप समझिये, इंसान बगलें तो क्या यहां नाखून तरशवाने की याचना भी नहीं कर सकता कि कहीं इसका अलग बिल पेश न हो जाय।

यह विदेशी केश वैराग्य किसी भी शरीफ़ हज्जाम को पसन्द नहीं। अब भी यदि किसी बुजुर्ग नाई से पूछिये कि उसके लिये संसार में सबसे बड़ी मुसीबत क्या है, तो वह पुराने वक्तों की याद में आह भरता हुआ यही उत्तर देगा—"छोटी बातें और लम्बे बाल।"

इतिहास के पन्ने उलटने से पता चलता है कि पूरब के नाइयों का काम बालों की बारीकियों में जाना हरगिज़ नहीं था। हमारे पुरखे अपनी

पगड़ी या पगोड़े इतनी सावधानी से उतारते थे कि उनके लिये उस्तरे से सिर को मुँड़वा लेना निहायत सुखदायी सिद्ध होता था। प्राचीन अरब, तुर्किस्तान, चीन सभी देशों में सिर का प्रायः उस्तरे से ही सत्कार होता था। अलबत्ता दाढ़ी के विषय में नापित को अपनी प्रवीणता दिखाने का .खूब अवसर मिलता था। ऐसे समय में यजमान और नाई के मुखारविन्द एक दूसरे के सामने होते थे और जिह्वा को चालू होने की खुद-बखुद उकसाहट मिलती थी। यही वजह है कि राजाओं, नवाबों और खलीफ़ाओं तक के दरबार में वाक्पटु तथा चटपटे नाइयों की हमेशा कदर होती थी। लेकिन इस कोरे ज़माने में तो नाई बेचारे का सारा समय गर्दन के पृष्ठभाग पर ही मेहनत करने में नष्ट हो जाता है।

यह सच है कि यूरोप ने अपने नापितवर्ग की इतनी कदर नहीं की, जितनी कि एशिया ने की है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में लिखा है कि नाइयों की दुकानें प्रायः निकम्मे और आवारा आदमियों के अड्डे हुआ करती थीं, जहां सारा दिन या तो चौपड़ उड़ती थी या गप्पें हाँकी जाती थीं। यह नहीं तो कोई दिलजला सुबह से लेकर शाम तक वंशी ही बजाया करता था। अलबत्ता यूरोप के हज्जाम जर्राही के लिये मशहूर थे, किन्तु आठवें हेनरी के राज्य में यह काम भी उनके हाथ से छिन गया। भारत में नाइयों का भाग्य नक्षत्र सदैव उन्नत रहा—यहां तक कि क्रमशः नाइयों ने अपनी योग्यता के बल पर चारों वर्णों के व्यवसायों पर अधिकार जमा लिया। अकबर ने एक बार बीरबल से कहा—

लाओ रे एक ऐसा नर
पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर।

लोग कहते हैं, बीरबल ने फ़ौरन एक ब्राह्मण को हुज़ूर की खिदमत में पेश कर दिया, किन्तु बात ग़लत है। वास्तव में बीरबल ने एक नाई को ही पेश किया था। एक प्रसिद्ध नापित विद्वान ने मुग़ल

दरबार के राजपूत स्कूल आफ़ आर्ट के पुराने चित्र का अध्ययन करके इस सत्य का आविष्कार किया है।

पृथ्वी पर कोई भी ऐसा काम नहीं, जो भारतीय नाई न कर सकता हो। ज्वालामुखी मंदिर के पुजारी वास्तव में नाई हैं, किन्तु अपने आपको ब्राह्मण बतलाते हैं। बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास "बन्देमातरम्" में ज़िक्र आता है कि कुछ नाइयों ने हजामत बनाने के बहाने शत्रुओं की सेना में घुसकर सिपाहियों के नाक-कान काट लिये थे। क्या यह क्षत्रियों का काम नहीं है? और देखिये, नाइयों के द्वारा ही लड़के लड़कियों की सगाई का व्यापार होता था—यह हो गया वैश्य का काम। और नाई बावरची तो प्रसिद्ध ही हैं—यह हुआ शूद्र का काम। यदि आप सच्चा ऐतिहासिक प्रमाण चाहते हैं तो वह भी प्रस्तुत है। सन् १८४० में लखनऊ के नवाब नासिरउद्-दीन हैदर का प्रधान मंत्री एक नाई था, जिसका नाम था सरफ़राज़ खां। शासन सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त साहब की हजामत भी माननीय सरफ़राज़ खां का नित्य कर्म था।

पुराने वक्तों में, बल्कि जहां-जहां पश्चिमी सभ्यता का पदार्पण नहीं हुआ, वहां अब भी, हिन्दू हो या मुसलमान, हर एक घराने का अपना अपना नाई होता था। मुझे याद है कि हमारे गांव में हमारा खानदानी नाई एक फ़जलदीन था, जिसे हम यदि चचा कहकर न पुकारते, तो मार पड़ती थी। जिन लोगों के विचार में हिन्दू और मुसलमान हमेशा से आपस में लड़ते रहे हैं, उन्हें यह जान लेना हितकर होगा कि सैकड़ों हिन्दू घरानों के नाई मुसलमान और मुसलमान घरानों के नाई हिन्दू हुआ करते थे। और इन नाइयों को कभी तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, बल्कि ये लोग अपनी लियाकत और सच्चरित्रता के लिये मशहूर थे।

दुल्हिन को मायके से ससुराल या ससुराल के मायके ले जाने का काम नाई के सुपुर्द था। जब नाई गाड़ी घोड़ा लेकर लड़की को बुलाने चला जाता, तो उसे कोई भी इंकार नहीं कर सकता था, क्योंकि दोनों परिवारों की ओर से नाई को लड़की के पिता के समान समझा जाता था। विवाह शादी के उचित नाते जोड़ने की भारी ज़िम्मेवारी भी नाई ही की थी। अपने यजमान की सन्तान का भविष्य सुधारने की ख़ातिर नाई गांव-गांव चक्कर काटता था। आगामी विवाह की सूचना बिरादरी के मेम्बरों को नाई के द्वारा ही पहुँचती थी। जिस-जिस को बारात में शरीक होना रहता, उसे नाई दो-दो साबुन की टिकिया दे आता था, ताकि वे अपने कपड़े धोकर सुसज्जित हो जायँ। बारात के रवाना होने पर बरातियों की हजामत बनाना, उनके आराम और सुख का प्रबन्ध करना उसी का पोर्टफ़ोलियो था। बारात के जुलूस में दूल्हे के सिर पर छत्र उठाकर नाई ही चलता था। उधर दुलहिन के घर का नाई दहेज सजाने, सम्हालने, बरातियों के ठहरने और बैठने का इन्तज़ाम करता था। उसकी पत्नी दुलहिन के बाल संवारती थी। दहेज को लड़की के ससुराल पहुँचाना भी नाई का कर्त्तव्य था। क्या मजाल कोई दूसरा उसे हाथ भी लगा सके।

इन प्रधान अवसरों पर यजमान अपनी सामर्थ्य के मुताबिक नाई को चाहे रकम दे दे या अनाज, नाई स्वयं अपना हाथ कभी आगे नहीं करता था। ये अवसर ही थे, जब वह यजमान से कुछ आशा रखता था, वरना कई साल लगातार हजामत बनाने के बावजूद भी वह ऐसे तुच्छ परिश्रम के लिये कभी पारितोषिक नहीं लेता था। यह उसकी हत्तक थी।

इसका एक कारण तो यह भी है कि हजामत बनाने में उन दिनों कोई ख़ास ख़ूबी नहीं मानी जाती थी। उस्तरे के एक ही प्रहार से

सिर भी मूंड़े जाते थे और दाढ़ी भी। दाढ़ी को कोमल करने के लिये साबुन इत्यादि अनावश्यक था। यजमान पानी ही से बड़े संतोष के साथ मुड़वा लेते थे। एक नाई के बारे में सुना है कि एक रईस ने उससे पूछा—"क्यों भाई उस्तरा तो ठीक है?" कहने लगा—"यजमान, उस्तरे की आप फ़िकर न करें। उसकी धार ठीक हो या न, बाजू में आपकी दया से पूरी ताकत है। और देखिये, पानी की कटोरी के नीचे राख भी ख़ूब जमा है। टक होते ही ऊपर चुटकी से दबा लेता हूँ। मजाल है, जो खून निकले।"

किन्तु दूसरा और वास्तविक कारण है पूरब के नाई का आत्म-गौरव। यदि पूरब का नाई किसी चीज़ पर जान देता है, तो वह है अपना चौधरीपन। उसकी इज़्ज़त इसी में है कि यजमान उसकी ख़ातिर करे और उसकी मेहनत की दाद दे। यदि कोई यजमान इसमें भी कंजूसी करे, तो नाई फ़ीरदौसी की तरह उसको निन्दा में कसीदे भी लिख सकता है। उदाहरणतः एक पंजाबी नाई की पुकार सुनिये—

बुथ काड के दान्त किराड़ मिल्यो
कुछ भूत-परेत का रूप बना जी,
छड़ी करे जी आओ जी, आओ जी,
टहल टकोर न पूछत पाजी,
निमणी खिमणी बहुत करे
जिवें बीच मसीत के निवें निमाज़ी
आओ जी लाला जी, बैठो जी भाया जी,
हैं-हैं जी, हूं-हूं जी, राजी जी राजी।

भावार्थ—किसी भूत या प्रेत की तरह मुंह बनाता अथवा दांत निकालता हुआ मुझे एक कंजूस बनिया मिला, जो केवल 'आओ जी, आओ जी' ही करता था, लेकिन और टहल सेवा कुछ नहीं। झुकता

वह इस प्रकार था, जैसे मस्जिद में निमाज़ पढ़ने वाला। लेकिन "हैं-हैं जी, हूं-हूं जी," के अलावा उससे मुझे कुछ न मिला।

व्रजभाषा और पंजाबी का इतना सुन्दर सम्मिश्रण फिर कभी नहीं हो पाया। गरज़ कि नाई कवि भी हो गये हैं। कई खान्दानों में नाई भाट का काम भी करता था और आड़े वक्त में नौजवानों के दिल, उनके पूर्वजों के कारनामे सुना-सुनाकर उभार दिया करता था।

जब रेलगाड़ी नहीं थी, और सफ़र करना भय से मुफ्त में भाग्य से टक्कर लेना समझा जाता था, केवल नाई का ही एक ऐसा सम्प्रदाय था, जो देश के कोने-कोने में भ्रमण करता और नव समाचार संकलित करता था। इसलिये उसकी दूरदर्शिता और बुद्धिमानी पर सबको गहरी श्रद्धा थी। यमजान उसकी किसी बात पर शक नहीं कर सकता था। यहां तक कि किसी अमीर के सुसराल से नाई आया। अमीर ने उससे कुशल समाचार पूछा, तो वह कहने लगा—"जनाब आपकी स्त्री विधवा हो गयी है।" अमीर धाड़ मार मारकर रोने लगा। दोस्तों ने पूछा—"क्या माजरा है?" तो अमीर ने सारी कहानी कह सुनाई। लोगों ने कहा कि यह कैसे संभव हो सकता है कि किसी की जीवितावस्था में ही उसकी पत्नी विधवा हो जाय? किन्तु अमीर को तसल्ली न होती थी। वह इतना ही कहता था—

तुम भी ठीक कहते हो भाई;
मगर घर से आया है नाई।

तात्पर्य यह कि नाइयों की कहानी पूर्वी सभ्यता का सबसे विलक्षण तथा रोमांटिक पहलू है, जो किसी भी अनुसंधानशील विद्यार्थी के लिये उपयोगी और रोचक साबित हो सकता है।

———

समाधि लेख

मैंने इसी स्थान पर एक लड़की को प्यार किया था।

इसलिये यौवन ही में मैंने इस भूमि को खरीद लिया।

इस अनन्त सुख की, जो मैं अब भोग रहा हूँ, कामना ने मुझे जीवन में भी सान्त्वना दी।

—बलराज साहनी

संस्मरण

द्विवेदी जी में एक दोष है। ढीलम-ढालम रहते हैं, हजामत हफ़्ते में एक बार से अधिक नहीं करते, तिस पर जो व्यक्ति पहली नज़र में उन्हें जच जाय उसकी ख़ैर, जो न जंचे उसे सामने बिठाकर उसके मुँह की ओर देखते रहते हैं। इसलिए कई महानुभाव शान्तिनिकेतन से यह धारणा बनाकर लौटते हैं कि द्विवेदीजी वैरागी आदमी हैं।

दूर बैठे हुए लोग द्विवेदीजी के आलोचनात्मक लेखों को पढ़कर यह अनुमान कर लेते हैं कि शास्त्राचार्य पचपन और साठ के दरमियान होंगे। प्रेमचन्द तक को यही भ्रम है। वास्तव में यह दोनों बातें ग़लत हैं।

मैं भी उन्हीं सौभाग्यशालियों में से हूं जिनकी ओर वह एकटक देखा करते हैं। किन्तु दूर ही से मुझे यह देखने का अवसर मिला है

कि वह इतने विरक्त नहीं हैं। जिस मंडली के साथ शाम को सैर करने निकल पड़े उसका अट्टहास मील के घेरे में कान चीरता है। उनके शुभचिन्तक शान्तिनिकेतन से आने वाले बटोहियों से प्रायः यही सवाल जवाब करके सन्तुष्ट हो जाते हैं।

'पंडितजी हँस रहे हैं न ?'

'हां हँस रहे हैं।'

देखने में छः फुट से कम नहीं। एक ऐसे बनारसी महापंडित के शिष्य रह चुके हैं जिनका सत्तर वर्ष की अवस्था में भी डेढ़ सौ सपाटा (डन्ड बैठक) प्रातःकाल का नियम था, जिन्होंने डबल निमोनिया का इलाज भी सपाटों से करने की कोशिश की और मर गये। आयु इकत्तीस वर्ष है। गाड़ी देखने के बेहद शौकीन हैं। दूर से आती हुई गाड़ी का शब्द सुनते ही शास्त्रार्थ व चप्पल छोड़कर लाइन की तरफ़ भाग खड़े होते हैं।

द्विवेदीजी जीवन से अथक प्रेम रखते हैं। एक सच्चे पारिहासिक की तरह वह उसकी क्रीड़ा को निर्लिप्त होकर देखते हैं, और अपने समेत सभी वस्तुओं पर हँस सकते हैं। किन्तु साथ ही उनमें जीवन के चरम उद्देश्य, साहित्य व कला की आर्यता के प्रति गहरी श्रद्धा है। ज्ञान और अनुभव के लिए अतोषणीय भूख है। सूई से लेकर सोशलिज़्म तक सभी वस्तुओं का अनुसन्धान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। किसी विषय पर भी अचल धारणाएं नहीं। बोलने के बजाय सुनना अधिक पसंद करते हैं। इसीलिए जिस मूर्तिमान समस्या को नहीं समझ पाते उसे सामने बिठाकर ताकते रहते हैं।

आत्म-सम्मान का उनमें एकदम अभाव है, फिर भी अपनी क्षमताओं व त्रुटियों की जांच स्वयं ही करना पसंद करते हैं। इसलिए प्रशंसात्मक पत्रों को फाड़कर फेंक देते हैं। अखबारों में तसवीरें छपवाना बुढ़ापे पर स्थगित कर रखा है। रुपए पैसे की पर्वाह नहीं करते। ऐसा आदमी अगर न हँसे तो कौन हंसे।

उनकी आलोचनाओं के गम्भीर तथा सारगर्भित होने का कारण यह है कि वह साहित्य को खेल की चीज़ नहीं समझते। मुद्दत से, उनके विचार में, उर्दू और कुछ हद तक यूरोपियन रोमांटिक साहित्य ने, सस्ते में छूट जाने की, अर्थात्. श्रृंगार और मुहावरेबाज़ी की प्रथा चालू कर दी है। हिन्दी साहित्य का पहला कर्त्तव्य यह है कि अपने रुके हुए विकास को अपनी पुरानी उपपन्न नींवों के बल पर उभारे। संस्कृत के समृद्ध साहित्य के लिए अगाध पक्षपात रखने के कारण उन्हें आधुनिक हिन्दी साहित्य में काफ़ी त्रुटियां नज़र आती हैं। कहानियां बहुत कम पढ़ते हैं। गद्य कविता व अतियथार्थवादः (sur-realism) के प्रति उनकी अपेक्षा उनकी इस निम्नोद्धत रचना में सीमित हुई है

अथ कविता

!!

[कौन किसकी सुनता है—]

अनन्त का नर्तन

शंख, नीहारिका, पैराबोला, हाइपरबोला।

× × ×

[कौन किसे सुनने देता है]

सुदूर की आवाज़ कानों को खाये जाती है।

[फ़ेंई, मानों कुंडी खटखटा रहा है]
खरल में पिसा करते हैं मोती।
घिसा करत हैं चन्दन
अशेष फूतकार
विराट् नर्तन।
छप् छप्।

[कौन किसकी सुनता है]
उफ़्

सेठों की पगड़ियां सुन्दरियों की साड़ियां,
पहलवानों के लंगोट, आगरे की दालमोट
छप् छप् छप्....।
[कौन किसे सुनने देता है।]
हुश।

ज्योतिष व नक्षत्र विद्या के भी माहिर हैं। आठ साल से महाभारत पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

बहुत लोग, इन पंक्तियों का लेखक भी उन्हीं में से है, अभिलाषा रखते हैं कि श्रीहर्ष की तरह द्विवेदीजी को भी कोई हकीम उड़द की दाल और बासी भात खिला दे, ताकि अनुसन्धान-वनुसन्धान को त्यागकर लगते हाथ एक नावेल लिख डालें। अपनी मोहक भाषा को अपना वास्तविक काम करने दें। जहां अभी साहित्य के मान बन ही नहीं पाये, वहां आलोचक का क्या काम? और जिसके पास लेखक होने की सामग्री विद्यमान है वह आलोचक बने क्यों? नावेल न सही, कोई कटाक्षपूर्ण निबन्ध संग्रह ही सही।

यह नहीं कि उनके प्रज्ञापूर्ण परिहास को उनकी कृतियों में अवसर नहीं मिला। अवश्य मिला है। लेकिन यदि उसका प्रवाह एक बार उसकी अपनी गहन अनुभूतियों में से छलककर बहे तो श्रीयत 'बच्चन' के लिए एक बेहतर मधुशाला तैयार हो।

———